श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

(५७)

गुणस्थानदर्पण

लेखक—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक :

मंत्री श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
२०१ पुलिस स्ट्रीट मेरठ सदर (उ० प्र०)

प्रति रुपया कमीशन व १५ प्रति
खरीदने पर १ प्रति
बिना मूल्य।

सन् १९५५

न्योछावर
१२ आने

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तकों की शुभ नामावली निम्न प्रकार हैं:—

१ श्रीमान् ला० महावीर प्रसाद जी जैन बैंकर्स सदर मेरठ ३००१)
२ „ „ मित्रसैन जी नाहरसिंह जी जैन मुजफ्फरनगर १००१)
३ „ „ प्रेमचन्द जी ओमप्रकाश जी निवार वर्कस मेरठ १००१)
४ „ „ सलेखचन्द जी लाल चन्द जी मुजफ्फरनगर ११०१)
५ „ „ कृष्णचन्द जी जैन रईस देहरादून ११०१)
६ „ „ दीपचन्द जी जैन रईस देहरादून १००१)
७ „ „ वारूमल जी प्रेमचन्द जी जैन मंसूरी ११०१)
८ „ „ बाबूराम जी मुरारीलाल जी जैन ज्वालापुर १००१)
९ „ „ केवलराम जी उग्रसैन जी जगाधरी १००१)
१० „ „ गैंदामल जी दगडूसाह जी जैन सनावद १००१)
११ „ „ मुकन्दलाल जी गुलशनराय जैन नईमंडीमु० १००१)
१२ „ „ कैलाशचन्द जी जैन देहरादून १००१)
१३† „ „ शीतल प्रसाद जी जैन मेरठ सदर १००१)
१४† „ „ सुखबीरसिंह जी हेमचन्द जी सर्राफ बड़ोत १००१)
१५† „ „ बाबूराम जी अकलंक प्रसादजी जैन रईस तिस्सा १००१)
१६† „ „ जयकुमार वीरसैन जी सर्राफ मेरठ १०००)
१७† „ „ फूलचन्द वैजनाथ जी मुजफ्फरनगर १०००)
१८† „ „ सेठमोहनलालजी ताराचन्दजी बड़जात्या जयपुर १००१)
१९† „ „ सेठ भवरीलाल जी जैन कोडरमा १०००)
२०† „ „ बा० दयाराम जी जैन S. D. O. मेरठ सदर १०००)
२१† „ „ मुन्नालाल यादवराय जी मेरठ सदर १०००)
२२× „ „ जिनेश्वरदास जी श्रीपाल जी जैन शिमला १००१)
२३× „ „ बनवारीलाल जी निरंजनलाल जी शिमला १००१)

नोट—जिनके कुछ रुपये आगये है उनके पहले † यह निशान अंकित है। × इनके रुपये इन्हीं के पास हैं। और सबके रु० आ गये हैं।

❀ यत्किञ्चित् ❀

प्रिय पाठक वृन्द ! आपके सामने यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष होरहा है। सन १९५५ के इस वर्षायोग में अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "श्रीमत्सहजानन्द" महाराजसे मुझे जीवस्थान चर्चा व अध्यात्मचर्चा अध्ययन करनेका शुभ अवसर मिला। मुझे इस ज्ञानोपयोगसे वह विशुद्ध आनन्द प्राप्त हुआ जो जीवनमें कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैंने महाराज श्री से निवेदन किया कि मैं गुणस्थानोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष परिचय करना चाहता हूँ अतः कापीमें प्रत्येक गुणस्थानोंके विषयमेंकुछ लिखनेकी करूणा कीजियजो अधिक विस्तृतभी न हो। तब आपने हमपर करुणा करकेसब गुणस्थानोंके विषयमे परिचयात्मक लेख लिखे। उनको एक इस पुस्तकके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। इस कृपा के लिये हम महाराजश्रीके बहुत आभारी हैं।

हम आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास करते हैं कि इस पुस्तकको ही नहीं किन्तु महाराजश्री द्वारा विरचित छोटी बड़ी सभी पुस्तकों अथवा उनके प्रवचनोंकी पुस्तकोंको पढ़कर पाठक मित्र अवश्य सत्य जागृति और आनन्द पावेंगे।

धर्मामृतपिपासु

उपाध्यक्ष व प्रधानट्रस्टी
श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

महावीरप्रसाद जैन बेंकर्स
मेरठ सदर

नवम्बर सन् १९५५

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

—:o★o:—

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥

१

मैं वह हूँ जो हैं भगवान । जो मैं हूँ वह हैं भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान । वे विराग यहँ रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान ॥
किन्तु आशावश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोइ न आन । मोह राग रुष दुखकी खान ॥
निजको निज परको पर जान । फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम । विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम । आकुलताका फिर क्या काम ॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम । मैं जगका करता क्या काम ॥
दूर हटो परकृत परिणाम । 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

गुणस्थानदर्पण

गुणस्थानेषु सर्वेषु गतानामाश्रयं शिवम् ।
अभिन्नं सहजं सिद्धं चित्स्वभावं नमाम्यहम् ॥१॥

यह जगत् -- अनंतानंत जीव, अनंतानंत पुद्गल एक धर्मद्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य असंख्यात कालद्रव्य इन सब अनंतानंत पदार्थोंका समूह है।

पदार्थ वह होता है जो अनादि, अनंत, स्वतःसिद्ध है व पर से अत्यन्त भिन्न और अपनेमें अभिन्न है। पदार्थ अपने ही द्रव्य, प्रदेश, परिणति और शक्तिसे है, किसी भी अन्यके द्रव्य, प्रदेश, परिणति शक्तिसे नहीं है। पदार्थ प्रति समय परिणमन करते रहते हैं। जो परिणमन है उसे पर्याय कहते हैं, जिस शक्तिका परिणमन है उसे गुण कहते हैं और एकाश्रित सर्व गुणोंका जो अभिन्न आधार है उसे पदार्थ या द्रव्य कहते हैं उक्त सब पदार्थोंमें ये लक्षण निर्विवाद हैं।

इन सब पदार्थोंमें जीव भी द्रव्य है और वे अनंतानंत हैं। प्रत्येक जीव अनंतशक्त्यात्मक है, शक्तिको गुण

कहते हैं। यहां यह निश्चय करना चाहिये कि प्रत्येक जीव में अनन्त गुण हैं, उन सब गुणोंमें प्रधान गुण यहां ३ विवक्षित हैं--दर्शन ज्ञान और चारित्र। इनमें से ज्ञान गुणका विकार नहीं होता किन्तु ज्ञानका कम होना अधिक होना पूर्ण होना ये दशायें होती हैं। ज्ञानके कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अप्रशस्त प्रकार मिथ्यात्वव अनंतानुबंधीके साहचर्यसे उपचारसे कहे गये हैं। विकार तो दर्शन और चारित्र गुणमें होता है और वही पश्चात विकार रहित भी शुद्ध परिणमता है।

दर्शन श्रद्धा- प्रतीतिको कहते हैं और चारित्र परिणमन में रत होनेको कहते हैं। जीवके दर्शन, चारित्रका तीव्र विकार भी होता है, मंदविकार भी होता है। कभी दर्शनका शुद्ध परिणमन होता और चारित्रका विशेष विकार होता है व मंद विकार होता है कहीं दर्शन चारित्र दोनोंका शुद्ध परिणमन हो जाता है आदि विशेषताओंसे इन गुणोंके विविध परिमणमन हो जाते हैं। इन गुणों इन सब परिणमनों को नानास्थानीय परिणमन कहते हैं, जिन्हें गुणस्थान शब्द से संज्ञित करते हैं।

ये गुणस्थान अनगिनते हैं, तथापि इनको समझनेके लिये इन परिणामनोंको किसी अपेक्षासे समस्त भावोंका संग्रह करके १४ प्रकार वीतराग महर्षियोंने सं

ज्ञपरम्परा से बताये हैं। इन्हीं गुणस्थानोंके विषयमें सिद्धांतसे अपरिचित बन्धुवोंको भी इसका परिज्ञान हो इस भावना को साथ लेकर अपने उपयोगको दुरुपयोगता से बचानेके लिये यह यत्न है। इसमें वे कठिनता अनुभव कर इस विषयसे विमुख न हो जाय इस कारण संक्षेपसे ही वर्णन किया जावेगा।

गुणस्थान

मोह और योगके निमित्तसे होनेवाली आत्माके दर्शन और चरित्र गुणकी अवस्थावों को गुणस्थान कहते है। इन गुणस्थानोंमें कोई तो मोहके उदयसे होते हैं, कोई मोहके उपशम से होते हैं, कोई मोहके क्षयोपशम से और मोहके क्षय व कोई मोहकी अनपेक्षासे तथा कोई योगके सद्भाव से और कोई योगके अभाव से होता है इन सभी प्रकारों को निमित्त कहते हैं अतः कहीं निमित्त सद्भावरूप हैं और कहीं निमित्त अभावरूप है। गुणस्थान १४ इस प्रकार हैं– १ मिथ्यात्व, २ सासादनसम्यक्त्व, ३ सम्यग्मिथ्यात्व,४ अविरत सम्यक्त्व, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत,७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तकषाय, १२ क्षीण कषाय, १३ सयोगकेवली, १४ अयोगकेवली। इनमें उपशामश्रेणी पर चढ़नेवाले साधुओंके परिणामोंका नाम

भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय है और क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले साधुओंके परिणामोंके नाम भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय हैं। गुण-स्थान का दूसरा नाम जीवसमास भी है जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं उन्हें जीवसमास कहते हैं, जीव गुणोंमें भावों में रहते हैं, वे गुण५ हैं-१औदयिक, औपशमिक, क्षायोप-शमिक क्षायिक व परिणामिक।कर्मोंके उदयसे होनेवाले भाव को औदयिक भाव कहते हैं। कर्मोंके उपशमसे होने वाले भावको औपशमिक कहते हैं। कर्मोंके क्षयोपशमसे होने वाले भावको क्षायोपशमिक कहते हैं। और कर्मोंके क्षय से होने वाले भावको क्षायिकभाव कहते है। जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय क्षयोपशमकी अपेक्षाके विना उत्पन्न होता है उसभावको पारिणामिक कहते हैं इन भावों के साहचर्य से आत्मा की भी गुणसंज्ञा होती है। उक्त गुण-स्थानों में ये भाव हैं।

इन गुणस्थानोंके योगसे आत्माके पूर्ण नाम इस प्रकार होते हैं।-१मिथ्यादृष्टि, २ सासादनसम्यग्दृष्टि ३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४ असंयतसम्यग्दृष्टि, ५ संयतासंयत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशामक व अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसंयत क्षपक,९अनिवृत्ति-करणबादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व अनिवृत्ति

वादरसाम्परायिक प्रविष्टशुद्धिसंयतक्षपक, सूक्ष्मसाम्परायिक प्रविष्ट शुद्धिसंयत उपशमक व सूक्ष्मसाम्परायिक प्रविष्ट शुद्धिसंयत क्षपक, ११ उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, १२ क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, १२ सयोगकेवली, १४अयोग केवली।

अब इन गुणस्थानोंका व गुणस्थानवर्ती आत्माओं के स्वरुपका क्रमशः विवरण करेंगे उनमें प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानको कहते हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थान

मिथ्यात्व प्रकृति नामक दर्शनमोहनीय कर्मके उदय से वस्तुस्वरूप के यथार्थ श्रद्धान न होनेको मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वके असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं तथापि कुछ समान जातिकी अपेक्षासे वीतराग महर्षियों ने संग्रह करके ५ भेद कहेंहैं—१ एकान्तिकमिथ्यात्व, २ सांशयिकमिथ्यात्व, २ विपरीत मिथ्यात्व, ४ वैनयिक-मिथ्यात्व, ५ अज्ञानमिथ्यात्व।

अनंतधर्मात्मक वस्तु के अन्य भावों को छोड़कर किसी भी धर्मकी (भावकी) श्रद्धा करना ऐकान्तिक-मिथ्यात्व है। वस्तुस्वरूपमें संशय करना सांशयिक मिथ्यात्व है। वस्तुस्वरूपसे विपरीत विश्वास करना विपरीत

मिथ्यात्व है। देव कुदेव , शास्त्र कुशास्त्र , गुरु कुगुरु आदि सभी को समान समझकर विनय व श्रद्धान करना वैनयिक मिथ्यात्व है। हित अहितके विवेकका अभाव अज्ञान मिथ्यात्व है।

संस्कार से सभी मिथ्यादृष्टियों के पांचों मिथ्यात्व हैं परन्तु व्यावहारिक अभिव्यक्तिकी अपेक्षासे देखा जावे तो क्रमशः सांशयिक मिथ्यात्व , ऐकान्तिक मिथ्यात्व। वेनयिकमिथ्यात्व , विपरीतमिथ्यात्व व अज्ञान मिथ्यात्व वाले जीव अधिक अधिक हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें अज्ञानमिथ्यात्वकी विशेषता है। सेनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें पांचों की विशेषता होसकती है। उपयोगमें एक समयमें एक मिथ्यात्व रहता है। मिथ्यात्वके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

अपनेसे सर्वथा भिन्न धन मकान पुत्र मित्र स्त्री आदिको अपने समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ।

शरीरका स्वरूप जीवोंसे बिलकुल जुदा है फिर भी शरीरको जीव समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ।

क्रोधादिकषाय जीवस्वरूप नहीं है किन्तु क्षणिक

विकार है उसको अपना स्वरूप समझना मिथ्यात्व है क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ

विकार व अविकार सब अवस्थायेंहैं उन्हें जीव वस्तु समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ।
खोट देव, खोटे शास्त्र, खोटे गुरू की सेवा करना, देवी दहाडी, होली आदि पूजना मिथ्यात्व है क्योंकि पदार्थ जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ। इस प्रकार अन्य प्रकारके सब भाव जो आत्मस्वभावसे भिन्न हैं उनमें रूचि प्रतीति हितबुद्धि करना सब मिथ्यात्व है।

जिनमें मिथ्यात्व पाया जाता है उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंकी विशेष जानकारीके लिये विवरनसहित मिथ्यादृष्टियोंके कुछ प्रकार कहते हैं।

अनंत मिथ्यादृष्टि—जिसको न तो अभी तक कभी सम्यग्दर्शन हुआ और न कभी भविष्यमें होगा वह अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि है। इसके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्व इन सम्यक्त्वविरोधक ५प्रकृतियों की सत्ता है शेष चारित्रमोहनीय की २१ की सत्ता है। इस प्रकार मोहकी २६ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। इसके तीर्थंकर व आहारक शरीर व आहारक अङ्गोपाङ्गकी भी सत्ता नहीं रहती। ये अभव्य या दूरातिदूर भव्य होते हैं,

अभव्य व दूरातिदूर भव्य अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

अनादि सांत मिथ्यादृष्टि—जिनके अब तक कभी सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु भविष्यमें सम्यक्त्व उत्पन्न होगा वे अनादि सांत मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी पूर्वत् ५+२१=२६ मोहनीय प्रकृतियोंकी सत्ता है। व तीर्थंकर प्रकृति व आहारकद्विककी सत्ता नहीं है। ये निकटभव्य मिथ्यादृष्टि या दूरभव्य मिथ्यादृष्टि होते हैं।

२८ मोह प्रकृतियोंकी प्रथम सत्तावाले मिथ्यादृष्टि—अनादि मिथ्यादृष्टि अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणाम द्वारा उक्त ५ प्रकृतियोंका उपशम करके जब प्रथमोपशम उत्पन्न करते ही सम्यग्दृष्टि बन जाता है तो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वके ३ भाग होजाते हैं कुछ वर्गणायें मिथ्यात्व रूप ही रहती है, कुछ सम्यग्मिथ्यात्व रूप और कुछ सम्यक् प्रकृति रूप हो जाती हैं और ये सब प्रथमोपशम सम्यक्त्वके काल तक दबी हुई (उपशांत) ही रहती है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त है सो अन्तर्मुहूर्त पश्चात् जब वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी विराधना कर मिथ्यात्व गुण-स्थानमें पहुंचाता है तब वह उक्त ५ प्रकृतियां व सम्यग्मि-थ्यात्व, सम्यक् प्रकृति तथा चारित्रमोहनीयकी शेष २१

इस तरह २८ मोह प्रकृतियोंकी प्रथमसत्तावाला मिथ्या दृष्टि कहलाता है । अब यह सदि मिथ्यादृष्टि जीव हो गया ।

२७ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टि—२८ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टिको जब मिथ्यात्वमें कुछ अधिक काल व्यतीत होजाता है तब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना (बदलना) हो कर वह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिरूप होजाती है, पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होकर वह मिथ्यात्वरूप हो जाती है जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना होचुकती है और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना न हो पावे तब वहां वह २७ मोहमीयप्रकृतिकी सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि कहलाता है । यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है ।

२६ मोहप्रकृतिकी सत्तावाला सादि मिथ्यादृष्टि— जब सम्यग्मिथ्यात्वकी भी उद्वेलना होकर वह मिथ्यात्व-प्रकृतिरूप हो जाती है तब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्वप्रकृति तथा चारित्र मोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियां इस प्रकार २६ की सत्तावाला यह मिथ्यादृष्टि है । इसे उद्वेलित मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं।

२४ की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि—जिस मिथ्यादृष्टि ने अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना (अप्रत्याख्य ना-वरण रूप हो जाना) करके उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया

था, वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जब सम्यक्त्वसे च्युत होता है और मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय होता है वहां यदि अनन्तानुबन्धीकी संयोजना न हो पावे तो अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष सब मोहनीयकी २४ प्रकृति की सत्तावाला वह मिथ्यादृष्टि होता है। ऐसी स्थितिका समय बहुत अल्प है। यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है। इस स्थितिमें जीवका मरण नहीं है।

अनन्तानुबन्धी उदय रहित मिथ्यादृष्टि—यह २४ की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जब उपशमसम्यक्त्वसे च्युत हुआ था अनन्तानुबन्धीकी सत्तासे रहित था सो अनंतानुबन्धीका उदय अब कैसे हो। इसके अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं है अतः यह अनन्तानुबंधी उदयरहित मिथ्यादृष्टि है। यह सादि मिथ्यादृष्टि है इसका काल अत्यल्प है। इसके अपर्याप्त अवस्था नहीं होती।

मरण रहित मिथ्यादृष्टि—अनन्तानुबंधीकी विसंयोजना करके जो उपशमसम्यग्दृष्टि हुआ था वह यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें आता है तो वह अनसंयोजित मिथ्यादृष्टि मरण रहित है। इसका अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता।

वेदकसम्यक्त्वसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व संयमासंयम दोनोंको एक साथ उत्पन्न करनेके अभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं वे वेदक

सम्यक्त्व सहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि है। इसके अधःकरण व अपूर्वकरण एकही बारमें होते हैं।

वेदक सम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ उत्पन्न करेंगे वे वेदकसम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी २ ही कारण होते हैं।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयमको एक साथ उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। इनके दोनों कार्यके लिये एक ही बार में तीन कारण होते हैं।

प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयमको एक ही बार में उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी दोनों कार्य केलिये एक बारमें तीनों करण होते हैं।

वेदक योग्य मिथ्यादृष्टि—जिसने २८ मोह प्रकृति की सत्ता प्राप्त की है वह मिथ्यादृष्टि जब तक उद्वेलना-संक्रमणकेद्वारा २७ की सत्ता नहीं कर पाता इस बीचके कालमें इस मिथ्यादृष्टि जीवके वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेने की योग्यता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को वेदक योग्य मि-

थ्यादृष्टि कहते हैं। यह सादि मिथ्यादृष्टि है।

तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि—मिथ्यात्व गुणस्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृति व आहारक शरीर, आहारका ङ्गोपाङ्ग इन तीन प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता। किन्तु जब कोई वेदकसम्यग्दृष्टि अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करले और पश्चात् भी वह वेदक सम्यग्दृष्टि रहे। यदि उसने तीर्थंकर प्रकृतिबंधसे पहिले कभी मिथ्यात्व अवस्था में नरकायुका बंध कर लिया हो तो वह नरक में अवश्य उत्पन्न होगा सो मरणकालमें सम्यक्त्व छूट जावेगा और नारक अपर्याप्त होजावेगा। इस समय यह जीव तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है। यह नारक अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होतेही अन्तर्मुहूर्त बाद वेदकसम्यग्दृष्टिहो ही जावेगा। वह जब तक वेदकसम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह तीर्थंकरकी सत्तवाला मिथ्यादृष्टि है। यह सादि मिथ्यादृष्टि है। यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होता। किन्तु इस मिथ्यात्वसे पहिले वेदकसम्यग्दृष्टि था और उस मिथ्यात्वके बाद भी वेदकसम्यग्दृष्टि होता है।

दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि जीव-अधःकरणपरिणामके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्व व दर्शन मोहकी सर्व प्रकृतियोंके अन्तकरण कर चुकने तक दर्शन

मो-ोपशामना प्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि है। इसका न यह मरण होता और जब तक प्रथमोपशमसम्यक्त्व रहेगा त तक मरण नहीं होगा।

आहारकद्विक की सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव- जिस सम्यग्दृष्टि जीवने आहारक शरीर, आहारकाङ्गोपा का बंध कर लिया पश्चात सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्या दृष्टि हो गया सो जब तक आहारद्विककी उद्वेलना नह होजाती तब तक आहारक द्विककी सत्तावाला मिथ्यादृ है। यह सादिमिथ्यादृष्टि। इसके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं था

ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव नहीं है जिसके तीर्थंक प्रकृति और आहारकद्विक इन तीनों की सत्ता हो अर्था जिसके इन तीनों की सत्ता है वह मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं आसकता।

अग्रहीतमिथ्यादृष्टि जीव—जिनके देहादि आत्म माननेकी बुद्धि है अथवा आत्मस्वभावका अनुभव न हुआ वे अग्रहीतमिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि इनको यह मिथ्य त्व किसी ने ग्रहणनहीं करा या है किन्तु बिना उपदेश हुआ। सभी मिथ्यादृष्टि अग्रहीतमिथ्यादृष्टि होते हैं एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक तो अग्रही मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। ये सादि मिथ्यादृष्टि व अना मिथ्यादृष्टि दोनों तरह के होते हैं।

ग्रहीतमिथ्यादृष्टि—जो कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र को हितकारी समझते हैं व आदर पूजा करते हैं वे ग्रहीत-मिथ्यादृष्टि है, सैनी पञ्चेन्द्रियजी व ही ग्रहीत मिथ्यादृष्टि होते हैं। जो ग्रहीतमिथ्यादृष्टि हैं वे अग्रहीतमिथ्यादृष्टि भी नियम से हैं। तथा सैनी पञ्चेन्द्रिय में ऐसे भी मिथ्यादृष्टि हैं जो ग्रहीतमिथ्यादृष्टि नहीं है , अग्रहीतमिथ्यादृष्टि ही है। ग्रहीतमिथ्यादृष्टि भी कोई सादिमिथ्यादृष्टि हैं और कोई अनादिमिथ्यादृष्टि भी है।

द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि—जिन्होंने निर्ग्रन्थ गुरु का लिङ्ग धारण किया है परन्तु भाव मिथ्यात्व गुणस्थानके हैं वे द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। ये सादिमि-थ्यादृष्टि भी होते हैं और अनादि मिथ्यादृष्टि भी होते। ये अग्रहीत मिथ्यादृष्टि हैं।

सातिशय मिथ्यादृष्टिं—अधःकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण करनेवाले मिथ्यादृष्टि सातिशय मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं, ये सम्यक्त्व के अतिनिकट अभिमुख होते हैं। ये भव्य मिथ्यादृष्टि ही हैं, अभव्यमिथ्यादृष्टि नहीं लब्धोन लब्धिक मिथ्यादृष्टि— मिथ्यात्वगुणस्थान में क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि , देशनालब्धि, प्रायोग्य लब्धि व करणलब्धि ये पांच लब्धियां होजाती हैं जिनमें करणलब्धिवाला तो सम्यक्त्व के अभिमुख है वह तो

सातिशय मिथ्यादृष्टि हैं किन्तु जिनके शेष १ या २ या ३ या चारों लब्धियां प्राप्त हुई वह आगे बढ़ भी सकता नहीं भी बढ़ सकता है तथा ये भव्यके भी होती है और अभव्य के भी हो सकती है। इन्हें लब्धोनलब्धिक मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि, ये पांच लब्धियां मिथ्यात्व गुणस्थान में होती हैं। करण तो सम्यक्त्व होनेके पश्चात भी कई कार्योंकेलिये होते हैं परन्तु यहां करणलब्धिसे प्रयोजन सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के लिये मिथ्यादृष्टि के अत्यन्त अपूर्व परिणामों से है।

क्षयोपशमलब्धि—जिस समय विशुद्धिकेद्वारा ऐसी शक्ति प्रकट हो जाती है कि पूर्व कर्मों के अनुभागस्पर्द्ध व प्रति समय अनन्त गुणहीन हो होकर उदीरणा को प्राप्त होते रहते हैं उस समयके क्षयोपशमकी प्राप्ति को क्षयोपशमलब्धि कहते हैं यहउत्थान के लिये प्रथम कदम है।

विशुद्धिलब्धि—क्षयोपशमलब्धि से अनन्त गुणहीन हो होकर अनुभागस्पर्द्धकों की उदीरणा होनेसे जीवके विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है उसे विशुद्धिलब्धि कहते हैं। इस परिणामसे शुभ कर्मोंके बंधकी बिशेषता होती है और अशुभ कर्मों के बंधकी हानि होती है।

देशनालब्धि—आचार्य आदिकेद्वारा तत्त्वोंके उपदेशों की प्राप्तिको और उपदेश किये गये अर्थके धारण और विचारणकी शक्तिकी प्राप्तिको देशनालब्धि कहते हैं।

प्रायोग्यलब्धि—सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका घात करके मात्र अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति कर देने और उत्कृष्ट अनुभागका घात करके द्विस्थानीय (मंद) अनुभाग कर देनेको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। इसमें ३४ बंधापसरण होते हैं, इनका वर्णन चौथे गुणस्थानोंके प्रकरण में करेंगे तथा करणलब्धि का भी वर्णन आगे गुणस्थानोंके प्रकरण में करेंगे।

इसी प्रकार अन्य अन्य अनेक अपेक्षावों से अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि होते हैं, बिस्तारभयसे इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं। और अन्य प्रकारकी कुछ विशेषतायें विवृत करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव तीसरे, चौथे, पांचवे व सातवें गुणस्थानोंमें जा सकता है पांचवे गुणस्थानमें जावेगा तो सम्यक्त्व व देशव्रत एक साथ होता है। सातवे गुणस्थान में जावेगा तो उपशम सम्तत्त्व या वेदक सम्यक्त्व व महाव्रत एक साथ हो जावेगा।

छटवें, पांचवें, चौथे, तीसरे दूसरे गुणस्थान से मिथ्यात्व गुणस्थान में जीव आ सकता है। छटवें से

आने पर महाव्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी। पांचवेसे आनेपर देशव्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण करके चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं परन्तु देवों में वे ग्रैवेयकसे ऊपर उत्पन्न नही होंगे अर्थात् ९ अनुदिश, ५ अनुत्तरोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते। ग्रैवेयकमें निग्रन्थ लिङ्ग में साधना करने वाले ही उत्पन्न होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्वसे च्युत होकर आसकते हैं किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें नहीं आसकते हैं, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व कभी भी नष्ट नहीं होता।

मिथ्यात्व गुणस्थान मोहके निमित्तसे होता है, अर्थात् मिथ्यात्वप्रकृतिनामक मोहनीय कर्मके उदयसे होता अत एव इस गुणस्थानमें भाव भी औदयिक भाव है।

इस गुणस्थानमें सादिमिथ्यादृष्टि जीवकी ऐसी भी स्थिति रहती है कि सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय और इन्हींका सदवस्थारूप उपशम व मिथ्यात्वका उदय है। किन्तु इससे भी वह क्षायोपशमिकरूप नहीं कहला सकता क्योंकि प्रथम तो ये बातें अनादि-

मिथ्यादृष्टि व उद्वेलित मिथ्यादृष्टि के न होने से सबमें व्याप्त नहीं है, दूसरी बात यह है कि मिथ्यात्व कार्य में निमित्त मिथ्यात्वका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थान अनाहारक, लब्ध्यपर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, व पर्याप्त इन चारों प्रकार के जीवोंमें संभव है। अयोगकेवली गुणस्थानी जीव पर्याप्त अनाहारक है और सिद्धजीव अतीतपर्याप्त अनाहारक है, इनके अतिरिक्त शेष सव अनाहारक जीव अपर्याप्त कहलाते हैं और लब्ध्यपर्याप्त व निवृत्यपर्याप्त भी अपर्याप्त कहलाते हैं परन्तु जिन जीवोंको पर्याप्त होना है उनके अनाहारक और निवृत्यपर्याप्त अवस्थामें भी पर्याप्तनामकर्मका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीवसमास १४ होते हैं क्योंकि वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, संज्ञीपञ्चेन्द्रिय इनके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनोंमें मिथ्यात्व गुणस्थान संभव है। परन्तु एक जीवके एक जन्ममें एक ही जातिके अपर्याप्त और पर्याप्त ये दो जीव समास होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पर्याप्ति ६ होती है। एक जीवकी अपेक्षा ऐकेन्द्रिय में अपर्याप्त व पर्याप्त अवस्थामें ४ अपर्याप्ति, ४ पर्याप्ति। द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असंज्ञी पञ्चेद्रिय में पांच अपर्याप्ति, पांच पर्याप्ति होती हैं।

सैनी पञ्चेन्द्रिय में ६ अपर्याप्ति, व ६ पर्याप्ति होती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राण १० होते हैं। एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रियके अपर्याप्त व पर्याप्त अवस्थाओंमें ३ व ४ प्राण होते हैं। द्वीन्द्रियके ४ व ६ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रिय के ५ व ७ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय के ६ व ८ प्राण होते हैं। असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय के ७ व ९ प्राण होते हैं। और सैनीपञ्चेन्द्रिय के ७ व १० प्राण होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञा ४ होती हैं। यदि एकेन्द्रिय आदि भी है तो भी संज्ञावों की निवृत्ति नहीं है, उनके भी संस्कार पड़ा हुआ है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में गति ४ होती हैं—चारों गतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं ये मिथ्यात्व गुणस्थान में मरकर भी चारों गतियों में जा सकते हैं। एक जन्म में एक ही गति होती है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में पांचों प्रकार की जाति हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय' पञ्चेन्द्रिय। मरण के बाद विग्रहगति तक में भी ये जाति रहती हैं। एक जीवके एक जन्म में एक जाति रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें छहों काय हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिका, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक। मिथ्यात्व में मरण करके भी छहो कायों मे

से किसीमें भी जीव उत्पन्न हो सकते हैं। एक जन्म में एक जीवके एक काय होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में १३ योग होते हैं-आहारकयोग व आहारकमिश्रकाययोग नहीं होते ये छटे गुणस्थान में ही हो सकते हैं। एक जीवके योग्यतामें ११ होते हैं क्योंकि वैक्रियक काययोग व वैक्रियक मिश्रकायोग हों तो औदारिकवाले २ योग नहीं होते और औदरिक २ हों तो वैक्रियक वाले २ नहीं होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में ३ योग होते हैं किन्तु एक जीव के २ या १ होता है। पर्याप्त अवस्था में १० योग होते, परन्तु एक जीव के ९ की ही योग्यता है क्योंकि देव नारकी के वैक्रियक काययोग होता है और मनुष्य तिर्यञ्चके औदारिककाययोग होता है। योगवाले सभी जीवोंमें एक समयमें एक ही योग होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ३ वेद होते हैं—यह भाववेदकी अपेक्षा कथन है। एक जीवके एक जन्ममें एक ही वेद होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें कषायें २५ होती हैं। एक जीव के अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन संबंधी सदृश एक एक कषाय=४. [illegible] में २ भय १ जुगुप्सा १ वेद १ इस तरह ९ हुई। किसी के ४+२

+१+०+१=८ । किसी के ४+२+०+१+१=८ । किसी के ४+२+०+०+१=७ । किसी के ३+२+०+०+१=६ भी कषाय हो सकती है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ज्ञान ३ होते है-कुमति कुश्रुत, कुअवधि । किसीके २ ही होते हैं कुमति, कुश्रुत । परन्तु एक जीवके एकदा एकही ज्ञानोपयोग होता है । अपर्याप्त अवस्थामें कुअवधि नहीं होता ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंयम ही होता ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें दर्शन चक्षुर्दर्शन व अचक्षुर्दर्शन ये दो होते हैं । विभंगावधि कुमतिज्ञानपूर्वक होता व उसमें अवधिदर्शन नहीं होता । तथा एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीवके चक्षुर्दर्शन भी नहीं होता । एकदा एक जीवके एक ही दर्शनोपयोग होता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ६ लेश्यायें होजाती है । शुक्ललेश्यातकके परिणाम मिथ्यात्वमें भी व अनंतानुबंधी कषायमें भी हो जाते है । एक जीवकेएक समय में एकही लेश्या होती है । एकेन्द्रिय से असैनीपञ्चेन्द्रिय तक तीन अशुभ लेश्यामें ही हो सकती है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भव्य भी होते हैं और अभव्य भी होते हैं । जो जीव भव्य है वह भव्य ही कहलाता जब तक सिद्ध न होजाय । सिद्ध होने पर न भव्य है न

अभव्य है। जो जीव अभव्य होगा वह सदा अभव्य ही रहेगा।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यादृष्टि ही होता है मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते है, जो जीव संज्ञी है उस जन्ममें संज्ञी ही रहेगा व जो असंज्ञी है वह असंज्ञी ही रहेगा

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आहारक भी होता है और अनाहारक जीव भी होता है। यह जीव विग्रह गतिमें ही अनाहारक रहता है शेष समय आहारक ही रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें उपयोग दोनों होते हैं किन्तु युगपत् नहीं होते।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ध्यान ८ होते वे ये हैं आर्तध्यान ४ और रौद्रध्यान ४। एक समयमें एक ही ध्यान होता है। योग्यता सब इन आठोंकी रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आस्रव ५५ हैं मिथ्यात्व ५, अविरति १२, कषाय २५, योग १३। एक जीव के आस्रव कम से कम १० और अधिकसे अधिक १८ होते है, मध्यके ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७ प्रकारके भी आस्रव एक एक जीवके होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भाव औदयिक, क्षायोपशमिक व परिणामिक भावके प्रभेदोंकी अपेक्षासे ३२ होते

किन्तु एक जीवकी अपेक्षा पर्याप्तमें २१ से २७ तक व अपर्याप्तमें २० से २७ तक होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका देह घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर एक हजार योजन तककी अवगाहनाका होता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अनंतानंत हैं अक्षयानंत है। मनुष्यगतिके मिथ्यादृष्टि संख्यात हैं उनसे असंख्यातगुणे नारकी मिथ्यादृष्टि हैं उनसे असंख्यातगुणे देव मिथ्यादृष्टि हैं उनसे अनंत गुणे तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव समस्त लोकमें रहते हैं क्योंकि लोक मिथ्या दृष्टि जीवोंसे भरा है। ऐसा कोई लोकका प्रदेश नहीं जहाँ अनंत मिथ्यादृष्टि न बसते हों। किन्तु विहार करने वाले मिथ्यादृष्टि सर्वलोकमें नही हैं क्योंकि विहार केवल त्रस जीव ही करते हैं जो कि कुछ कम त्रसनाली (१४ राजू) में रहते हैं। त्रसोमें भी पर्याप्त त्रस विहार करते हैं वे भी सब नही करते हैं फिर भी विहार कुछ समयको ही करते हैं अधिक समय आवास स्थान पर रहते हैं। मिथ्यादृष्टि देव विक्रियासे गमनागमन करें तो करीब इतने ही क्षेत्रमें विहार करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव सदाकाल रहते हैं। किन्तु एक जीव की अपेक्षासे मिथ्यात्व जघन्यसे तो अन्तर्मुहूर्तकाल

तक रहता है और उत्कृष्टसे(१४अन्तमुर्हूतकम) अर्द्ध पुद्गल परिवर्तनकाल होता है। ये १४ अन्तमुहूर्त भी एक अन्त-मुहूर्तमें गर्भित हैं। कोई जीव तीसरे याचौथे या पांचवें या छटे से जीव मिथ्यात्वमें आवे वहां जघन्य अन्तमुहूर्त रहकर फिर तीसरे या चौथे या पांचवे या सातवेंमें चला जावे तो बीचमें जो मिथ्यात्व आया था वह सर्व जघन्य अन्तमुर्हूत रहा। दूसरे गुणस्थानसे गिरकर मिथ्या-त्वमें आवे और फिर तीसरे या चौथे आदि में पहुंचे ऐसे जीवको मिथ्यात्वमें सर्वजघन्य अन्तमुर्हूतमें अधिक समय लगता क्योंकि अधिक संक्लेश परिणामसे मिथ्यात्वमें आया था। उत्कृष्टकाल इस प्रकार लगता है कि अनादि मिथ्यादृष्टि कोई जीव अर्द्ध पुद्गल परिवर्तनकाल के शेष रहने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और अन्त-मुर्हूत रहकर सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आगया मिथ्यात्वमें ही भ्रमता रहा अन्त में जब अन्तमुहूर्त शेष रहा जिसमें १३ अन्तमुहूर्त हैं उसमें सम्यक्त्व चारित्र की साधना करके सिद्ध होगया सो १ अन्तमुर्हूत तो सबसे पहिले के सम्यक्त्वमें लगा था जिसके बाद मिथ्यात्व हुआ और १३ ये। १४ अन्तमुहूर्तकाल अर्द्ध पुदगल परिवर्तनकाल मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल है।

अपूर्व पुरुषार्थ के वे १२ अन्तमुहूर्त इस प्रकार हैं—

१ प्रथमोपशमसम्यक्त्व में ,(२) वेदक सम्यक्त्वमें (३) अन
नुबंधीके विसंयोजनमें, (४) दर्शनमोहके क्षय में. (५) अप्र
मत्तसंयतमें, (६) प्रमत्त अप्रमत्तमेंसहस्त्रों वार परिवर्तनमें
(६) सातिशय अप्रमत्तमें, (८) अपूर्वकरण क्षपकमें, (९
अनिवृत्तिकरण क्षपकमें, (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकमें
(११) क्षीणकषायमें, (१२) सयोगकेवलीमें (१३) अयोग
केवलीमें । इसके पश्चात् सिद्ध होगया ।

मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थान को छो
कर फिर जल्दी मिथ्यात्वमें आवे तो वह बीच का अन्तर
अल्प अन्तमुहूर्त हैं । एक ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जो पहिले
तीसरे चौथे पांचवे सातवें छटवें में बहुत बार परिवर्तन कर
करके मिथ्यादृष्टि हुआ वह सम्यक्त्व को प्राप्त करके अल्प
अन्तमुहूर्त सम्यक्त्व में रहकर मिथ्यात्व में आजाता है सो
यही जघन्य अन्तर है । जो संयम व सम्यक्त्व में बहुत र
रहकर मिथ्यादृष्टि नहीं हुआ और बहुत पहिले से ही मिथ्या
यात्व में है । वह यदि सम्यक्त्व पावेगा तो इस मिथ्या-
दृष्टि से अधिक जघन्यकाल में वह रहेगा ।

मिथ्यात्वदृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थान को
छोड़दे और अधिक काल अन्य गुणस्थानों में रहकर फि
मिथ्यात्व में आवे तो यह उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कम
१३२ सागरका होता है । कोई मिथ्यादृष्टि जीव वेदक

सम्यक्त्वको प्राप्त करे वहां अन्तर्मुहूर्तकम ६६ सागर तक रहे फिर अन्तर्मुहूर्त तीसरे गुणस्थानमें रहे फिर वेदक सम्बक्त्व प्राप्त करे यहां अन्तर्मुहूर्तकम ६६ सागर तक रहे पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें आजावेतो यह अन्तर अन्तर्मुहूर्तकम १३२ सागर का होता है। यहां विशेषध्यान देने की बात यह है कि यदि कोई जीव पूरा ६६ सागर वेदक सम्यक्त्वमें रहले तो फिर क्षायिक सम्यक्त्व ही हो होगा। इस कारण इस अन्तर में अन्तर्मुहूर्त कम वेदक सम्यक्त्व में वताया गया है।

मिथ्यादृष्टि जीवो में एक जीव की अपेक्षा गति इन्द्रिय आदि की अपेक्षासे कितने ही प्रकार से बंध प्रकृतियां होती है इसी प्रकार उदय और सत्त्वकी प्रकृतियां होती है तथापि सामान्यालापसे मिथ्यादृष्टि के ११७ प्रकृतिं का बंध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिनामकर्म, आहारकनामकर्म, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म नहीं बंधता है। सव बंधयोग्य प्रकृति ११७ मानी है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृतिका तो बंध नहीं होता और शरीर, बन्धन, संघात की १५ प्रकृतियों को ५ में गर्भितकर लिया और स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५ इन २० प्रकृतियोंको ४ मूल पिन्डमें ले किया। इस तरह सव १४२ प्रकृतियोंमें से २+१०+१६=२८प्रकृति कम करनेसे १२० होते हैं)

मिथ्यादृष्टि जीवमें सामान्यालाप से ११७ प्रकृतिक उदय है, तीर्थंकर नामकर्म, आहारक शरीरनामकर्म, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति व सम्यक्त्व प्रकृति इन पांच का उदय नहीं है। उदय योग्य सब प्रकृति १२२ है। बंधयोग्य प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृति और मिलानेसे उदययोग्य १२२ प्रकृतियां होजाती है।

मिथ्यादृष्टि जीवमें सत्त्व १४८ प्रकृतिका हो सकता

मिथ्यादृष्टि, असद्दृष्टि, व्यवहारदृष्टि, अभूतार्थदृष्टि अयथार्थदृष्टि, असत्यार्थदृष्टि, पर्यायदृष्टि, परसमय, पर्यायमूढ़, पर्यायबुद्धि, वितथदृष्टि, व्यलीकदृष्टि, मिथ्यादृष्टि मोही, मुग्ध मूढ़ आदि सब एकार्थक है।

जीवोंको संसारक्लेशका मूलकारण मिथ्यात्व है इसका विनाश अनंतानुबंधी कषाय व दर्शनमोहकाउपशम व क्षयोपशम को निमित्त पाकरके होता है। क्षय तो उसीके होता है जिसके मिथ्यात्वका अभाव है अर्थात् वेदकसम्यक्त्व है। उपशम क्षयोपशम का निमित्त आत्मभावना है, आत्मभावना का कारण भेदविज्ञान है, भेदविज्ञानका कारण तत्त्वाभ्यास है, तत्त्वाभ्यासका निमित्त ज्ञानावरणका विशिष्ट क्षयोपशम है। सो विशिष्ट क्षयोपशम तो प्राप्त होगया अब

तत्त्वाभ्यास करके और उसको अभेद स्वभावमें ले जाकर अपने आपको निस्तरंग बनाकर मिथ्यात्वसे रहित होओ। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब सासादन सम्यक्त्व गुणस्थानके विषयमें कहते हैं—

सासादन सम्यक्त्व

जिस उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी विराधना (विनाश) हो गई और मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होने वाला मिथ्यात्व आ नहीं पाया इस बीचके परिणामोंको सासादनसम्यक्त्व कहते हैं।

आसादन नाम सम्यक्त्वकी विराधनाका है, जो आसादनसे अर्थात् सम्यक्त्वकी विराधनासे सहित है उसे सासादनसम्यग्दृष्टि कहते हैं इसके परिणामको सासादन सम्यक्त्व कहते हैं।

आयं असादयति इति असादनम् यहां वृषोदरादित्वात् य शब्दका लोप हो गया और कृद्वहुलम् इस नीतिसे अनट् प्रत्यय हुआ तब आसादनम् बना। आसादनका अर्थ है जो औपशमिक सम्यक्त्वकी आय (लाभ) को नष्ट कर दे। इस आसादनके साथ जो रहें उन्हें सासादन
।

इसका दूसरा नाम सास्न भी है। असन अर्थात्

सम्यत्त्वकी विराधना उसके साथ जो रहे उसे सासन कहते हैं।

इसका दूसरा नाम सास्वादन भी हो सकता है। सम्यत्त्वरूपरस के आस्वादनसे जो रहे सो स+आस्वादन सास्वादन है परन्तु आस्वादनके करनेवाले पुरुषके वमन के स्वादके समान आखिरी बिगड़ा स्वाद है। इसके पश्चात् नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। यह सम्य-त्त्वका वमन करनेवाला जीव है।

इस गुणस्थानवाला जीव असद्‌दृष्टि है क्योंकि इसके अनंतानुबन्धीजनित विपरीत अभिप्राय है।

जैसे कोई पर्वतके शिखरपर से गिर पड़े और जबतक भूमिमें न पड़े ऐसी बीचकी स्थिति होती है इसी तरह सम्यत्त्वसे गिर जाय और मिथ्यात्वमें न आ-पाये ऐसे बीचका परिणाम इस गुणस्थानमें है।

इस गुणस्थानमें चारों गतिके जीव होते हैं परन्तु सासादनमें मरण करके नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता। नरकगतिमें जीव सासादन गुणस्थानको उत्पन्न कर लेते हैं अर्थात् सम्यत्त्वसे च्युत होकर नारकी भी सासादन को प्राप्त होते हैं।

सासन गुणस्थानवर्ती जीवके तीर्थंकरप्रकृति व आहा रकद्विक इनमेंसे किसीकी सत्ता नहीं होती अर्थात्

इनमेंकिसी की भी सत्ता हो तो वह जीव सासादन गुण-स्थानमें नहीं जाता । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी विशेष जानकारीकेलिये विवरण सहित कुछ सासादनसम्यग्दृष्टि-योंके प्रकार कहते हैं ।

प्रथमोपशमच्युत सासादन-जो जीवप्रथमोपशमसेच्युत होकर इस गुणस्थानमें आये हैं ।

द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृत सासादन-जो जीव द्वितीयोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आगया वह मरण करे तो द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृतसासादन है । यह जीव देवगतिमें उत्पन्न होता । सासादन जीव पर्याप्त होजाता व अपर्याप्त में ही मिथ्यादृष्टि हो जाता है ।

प्रथमोपशमच्युत सासादनमृत सासादन-जो जीव प्रथमोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आगया वहां मरण करे तो वह प्रथमोपशमच्युत सासादनमृतसासा-दन है । यह जीव मरणकरके तिर्यञ्च, मनुष्य या देव इन गतियोंमें से किसी भी गतिमें जा सकता है ।

विग्रहगतिसमाप्तसासादन- जीव सासन गुणस्थानके २-१ समय शेष रहने पर मरा तो उसका वह गुणस्थान जन्मस्थान पर पहुँचने तक ही पूर्ण हो सकता है । ऐसा जीव विग्रहगतिसमाप्त सासादन है ।

निर्वृत्यपर्याप्तिसमाप्तसासादन -जो जीव जन्म-

स्थान पर पहुंचकर भी सासादन रहते हैं वे शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले ही अपना सासादन गुणस्थान पूर्ण कर देते हैं अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं ।

क्रोधप्रेरित सासादन —उपशमसम्यक्त्वका काल कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक ६ आवली शेष रहनेपर सासादन गुणस्थान हुआ करताहै । सो अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया व लोभ इनमें से किसीका उदय होतेही सासादन होताहै उस जीवके यदि अनंतानुबंधी क्रोध के उदयके निमित्तसे सासादनसम्यक्त्व हुआहै तो वह क्रोध प्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि है ।

मानप्रेरित सासादन—जो जीव अनन्तानुबंधी मान कषायके उदयसे सासादन गुणस्थानमें आये हैं वे मानप्रेरित सासादन हैं ।

मायाप्रेरित सासादन–जो जीव अनंतानुबंधी माया कषायके उदयसे सासादनगुणस्थानमें आये हैं वे मायाप्रेरित सासादनसम्यग्दृष्टि हैं ।

लोभप्रेरित सासादन–जो जीव अनंतानुबंधी लोभकषायके उदयसे सासादनगुणस्थानमें आये हैं वे लोभप्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि हैं ।

इसीप्रकार अन्यअपेक्षाओंसे भी इसके प्रकार जानना चाहिये।

सासादन गुणस्थानमें मरण करके जीव बादर एके-

न्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनीपञ्चेन्द्रिय व सैनी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकते हैं।

सासादन गुणस्थानमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असैनीपञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, सैनीपन्चेन्द्रिय पर्याप्त ये ७ जीव समास होते हैं। जिस मतसे सासादन मरकर सैनीपञ्चेन्द्रियमें ही उत्पन्न होता है उस अपेक्षासे २ ही जीव समास होते हैं? १ सैनी पन्चेन्द्रिय-अपर्याप्त, २ सैनी पन्चेन्द्रिय पर्याप्त।

सासादनमें ४ अपर्याप्तियाँ, ५अपर्याप्तियाँ, ६अपर्याप्तियाँ व ६ पर्याप्तियाँ होती हैं, अथवा ६ अपर्याप्तियां व ६ पर्याप्तियां होती हैं।

सासादनमें प्राण३, ४, ५, ६, ७, ७ व १० प्राण होते हैं अथवा ७ या १० प्राण होते हैं।

सासादनमें संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रियजाति ५अथवा एक सैनी पन्चेन्द्रिय, काय६ या १ त्रसकाय होते हैं।

सासादनमें योग १३ होते हैं आहारककाययोगद्विक नहीं होते। परन्तु एक जीवके पर्याप्तमें९ और अपर्याप्तमें २ या १ योग्यतासे होते हैं। एकदा एक ही योग होता है

सासनमें वेद तीनों होते हैं किन्तु एक जन्ममें एक ही वेद होता है।

सासनमें कषाय २५ होती हैं। एक जीव की अपेक्षा ७ या ८ या ९ होते हैं। सासनमें ३ कुज्ञान, एक असंयम २ दर्शन, ६ लेश्या भव्यत्व, सासनसम्यक्त्व, संज्ञी असंज्ञी २ अथवा संज्ञी एकही, आहारक व अनाहारक होते हैं। उपयोग दोनों क्रमशः होते।

सासनमें ध्यान आर्तध्यान ४ व रौद्रध्यान ४ ये ८ होते हैं। एक समय एक जीवके एक ही ध्यान होता है

सासादनमें आस्रव ५० होते हैं, यहाँ मिथ्यात्व ५ और आहारककाययोग व आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता। पर्याप्तमें ४७ आस्रव हैं और अपर्याप्तमें ४० आस्रव हैं परन्तु एक जीवकी अपेक्षासे पर्याप्तमें १० से १७ तक और अपर्याप्तमें भी १० से १७ तक होते हैं।

सासादन गुणस्थानमें भाव ३२ होते हैं और पर्याप्त सासादनमें भी ३२ हैं व अपर्याप्त में ३४ हैं, किन्तु एक जीवकी अपेक्षासे सासादन पर्याप्तमें २१ से २७ तक हो सकते हैं और अपर्याप्तमें २० से २७ तक होसकते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर १००० योजन तक की होसकती है। बड़ी अवगाहना का जीव महामत्स्य है।

सासनसम्यग्दृष्टियों की संख्या अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और कमसे कम

कभी एक भी रहती है और कभी ऐसा भी होता है कि एक भी नहीं होता।

सासादन जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

सासादन सम्यक्त्व का काल एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक ६ आवली हैं। नाना जीवकी अपेक्षा एक समयसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग तक सासन रहते हैं इसके पश्चात् नियमसे विरह होता है। बीचमें भी कभी एक समय या अधिक समय का विरह हो सकता है।

सासादनसे पहिले गुणस्थानमें ही पहुंचना होता, परन्तु दूसरेमें चौथे, पांचवें या छटवेंसे पहुंच सकता है। उपशमसम्यक्त्वकी विराधनासे चौथे से पहुँच सकता है, उपशमसम्यक्त्व व संयमासंयमकी एक साथ विराधना से पांचवेंसे दूसरेमें जाता है और उपशमसम्यक्त्व व महाव्रतकी एक साथ विराधना होनेपर छटवेंसे दूसरे में पहुंचता।

सासन गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृतियोंकी संख्या नाना प्रकारसे हैं क्योंकि गति आदिके भेदसे ये नाना प्रकारके होजाते हैं। नाना जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृति इसमें १०१ है क्योंकि इस गुणस्थानमें

मिथ्यात्व, हुंडक, नपुसंक, असंप्राप्तसृपाटिका, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये १६ तो मिथ्यात्वमें बंधव्युच्छित्तिवाली और तीर्थंकर व आहारकद्विक इस तरह १९ प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है।

सासन गुणस्थानमें उदय एक जीवकी अपेक्षा गति आदिके भेदसे भिन्न भिन्न प्रकारसे है। नाना जीवकी अपेक्षा उदय १११प्रकृतियोंका है। इसमें मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण इन ५ मिथ्यात्वमें उदय व्युच्छित्तिवाली तथा तीर्थंकरप्रकृति, आहारद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति नरकगत्यानुपूर्वी ये ६ इस प्रकार ११ प्रकृतिका उदय नहीं है।

सासादनमें सत्त्व नाना जीवकी अपेक्षा १४५ प्रकृतियोंका है क्योंकि जिसके तीर्थंकरप्रकृति व आहारकद्विककी सत्ता होती है वह दूसरे गुणस्थानमें नहीं पहुँचता। इस गुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृति व आहारकद्विक इन तीनकी सत्ता नहीं होती।

इस गुणस्थानमें मोहकी ओरसे पारिणामिकता होनेसे पारिणामिकभाव है, अर्थात् सासादन गुणस्थान दर्शनमोहके न उदयसे होता है, न क्षयसे, न उपशम

से, न क्षयोपशमसे। अतः परिणामिक भावहै। यह पारिणामिकपना केवल दर्शनमोहकी अपेक्षासे है। इसे जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्वकी तरह पारिणामिकता नहीं समझना। क्योंकि जीवत्व आदि तो आठों कर्मों की ओर से पारिणामिक है परन्तु सासादन गुणस्थान केवल दर्शनमोहकी ओर से पारिणामिक है।

यह गुणस्थान अनंतानुवन्धी कषायके उदयसे होता है। इसलिये औदयिक भी कह सकते हैं किन्तु इस कथन की प्रधानता नहीं हैं। क्योंकि आदिके ४गुणस्थान दर्शनमोहकी अपेक्षासे कहे गये हैं।

इस गुणस्थानमें निमित्त मोह है क्योंकि मोहकी अपेक्षा पारिणामिकता होनेसे वह गुणस्थान हुआ है।

इस गुणस्थान व इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम सान भी सांकेतिक संक्षिप्त नाम हैं स याने सहित, अनयाने अनंतानुबन्धी अर्थात् जो अनंतानुवन्धी कषायके उदयसे सहित है उसे सान कहते हैं। यद्यपि अनंतानुबंधी कषाय का उदय पहिले गुणस्थानमें भी है तथापि वह मिथ्यात्व करिके भी सहितहै अतः इस शब्दसे मिथ्यात्वके उदयरहित अनंतानुबंधीके उदयकी विशेषता प्रकट की गई है। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वका उदय नहीं है और अनंतानुबन्धी कषायका उदय है अतः सानशब्दसे द्वितीय

गुणस्थान व द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीवका ग्रहण हुआ ।

सासादन सम्यग्दृष्टि , सासादनसम्यक्त्व , सासादन , सासन , सास्वादन , मान ये सब एकार्थवाचक हैं ।

इस प्रकार सासादन सम्यक्त्वका वर्णन करके अब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं —

सम्यग्मिथ्यात्व

सम्यक् याने समीचीन (सच्ची), मिथ्या(झूंटी), दृष्टि कहिये श्रद्धा या रुचि जिसके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके परिणामको सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं । गुण गुणी में अभेद करके सभी गुणस्थान गुणस्थानवर्तियोंके नाम हैं और गुणस्थानवर्ती जीव ही गुणस्थान है ।

एकसाथ समीचीन असमीचीन श्रद्धावाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है । जैसे पहिले माने हुए अन्य देवता का परित्याग किये बिना अरहंतमें भी देव हैं ऐसी श्रद्धा होना इसी तरह तत्त्व आदिके सम्बन्धमें लगा लेना ।

जैसे किसी पुरुषकी किसीमें मित्रता है और किसी में शत्रुता है तो मित्रता व शत्रुता दोनों प्रकारके भाव एक पुरुषमें संभव है इसी प्रकार तत्त्वश्रद्धान और अतत्त्वश्रद्धान एक साथ जीवमें कदाचित् संभव है ।

यह गुणस्थान न तो सम्यक्त्वरूप ही है और न मिथ्यात्वरूप ही है किन्तु दोनोंसे विलक्षण मिश्ररूप है । जैसे

दही व गुड़के मिक्चर में न गुडका स्वाद रहता है, दोनोंसे विलक्षण मिश्र स्वाद है।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे होता है परन्तु यह उदय शिथिलरूप है, क्षयोपशमवत् है अथवा मिश्ररूप है अतः क्षायोपशमिक भाव है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका भी दूसरा नाम मिश्र सम्यक्त्व है वह प्रकृति मिथ्यात्वके स्पर्द्धककी शिथिलतासे टूट फूट से बनी है अतः उसका उदय क्षायोपशमिकतावत् है।

इस गुणस्थानमें यद्यपि यह भी स्थिति रहती है कि मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय व आगामी उदययोग्य इन्हीं स्पर्द्धकोंका उदयाभावरूप उपशम सम्यग्मिथ्यात्वका उदय है किन्तु इस कारण से क्षायोंपशमिक भाव नहीं है। क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे तीसरे गुणस्थानमें आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता किन्तु उदयाभाव पाया जाता तथा इस तरह क्षायोपशमिक माननेपर सादि मिथ्यादृष्टि जीवके भी मिश्रसम्यक्त्व व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय व उदयाभावरूप उपशम, मिथ्यात्वकाउदय होनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानको भी क्षायोपशमिक मानना पड़ेगा।

इस गुणस्थानमें यद्यपि अनंतानुबंधीके क्षयोपशमकी भी स्थिति रहती है किन्तु इस कारण से भी क्षायोपशमिकता

नहीं, क्योंकि आदिके चार गुणस्थान दर्शनमोहके निमित्त माने गये, तभी तो दूसरे गुणस्थानको भी औदयिक न कहा। दूसरी बात यह है कि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्र आये हुए जीवके अनंतानुबंधीका उदयभावी क्षय नहीं पा जाता, मात्र उदयाभाव पाया जाता है।

इस गुणस्थानमें सम्यक्प्रकृतिका उदयक्षय व सी उदयाभाव उपशम और सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे भी क्षायो पशमिकता नहीं मानना, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्र आये हुए जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता, मात्र उदयाभावरूप उपशम रहता है।

उक्त तीनों प्रकारकी क्षायोपशमिकताओंका ज्ञान तो अवश्य करलेना चाहिये किन्तु इस गुणस्थानमें इस हेतुसे क्षायोपशमिकता नहीं मानना चाहिये क्योंकि उन लक्षणोंमें अव्याप्ति दोष है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी कुछ विशेषतावोंके लिए उनके प्रकारोंका कुछ वर्णन करते हैं—

वेदकयोग्यमिथ्यात्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके उसके पश्चात् अथवा यथासमय तक यथायोग्य अवस्थाके पश्चात् मिथ्यादृष्टि हुआ है उसमें सम्यक्त्वविरोधिनी सातों प्रकृतियोंका सत्त्व हैं उसके वेदकयोग्यकाल के भीतर यदि सम्यग्मिथ्यात्वका उदय आ-

जावे तो वह वेदकयोग्यामिथ्यात्वगयतसम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसके मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति व अनंतानुबंधीका उदयाभावीक्षय और उदयाभाव उपशम तथा सम्यग्मिथ्यात्व व अन्यकषायोंका उदय हैं।

द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि- द्वितीयोपशम के सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर यदि सम्यग्मिथ्यात्व का उदय आजाय तो वह द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं। इसके मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयाभावरूप उपशम रहता है। द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि श्रेणीमें तो क्रमशः उतरकर छटे तक आता है इसके पश्चात् क्रमशः या एक दम सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है।

प्रथमोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर तीसरेगुणस्थानमें आये हैं वे प्रथमोपशमागतसम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं। इस प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि ने यदि अनंतानुबंधीका प्रशस्तोपशम किया था तो वहां मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभाव व अनंतानुबंधीके अतिरिक्त अन्यकषाय व सम्यग्मिथ्यात्व का उदय रहता

वेदकसम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि जो वेदकसम्यक्त्व से च्युत होकर सम्यग्मिथ्यात्वमें आया वह वेदकसम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि। है इस जीव के मिथ्यात्व सम्यक्

प्रकृति अनंतानुबंधीका उदयाभावी क्षय व उदयाभाव-रूप उपशम व सम्यग्मिथ्यात्व व अन्य कषायका उदय रहता है।

२८ की सत्तावाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि--२८ प्रकृति की सत्तावाले मिथ्यात्वसे तीसरे गुणस्थानमें आये हुये अथवा वेदकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिश्र गुणस्थानमें आये हुए जीव २८ की सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं।

२४ की सत्तावाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि-- अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले द्वितीयोपशम सम्यक्त्व स्थानसे च्युत होकर जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुये हैं वे २४ की सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि है

उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जो ऊपरके गुणस्थानसे च्युत होकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और पश्चात् अविरत सम्यक्त्वमें पहुंचे तो वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसका इस गुणस्थानमें सर्व-जघन्यकाल नहीं होता क्योंकि सम्यग्दृष्टि संक्लेशपरिणामसे सम्यग्मिथ्यात्वमें आया उसे फिर ऊपर ही जानेको विशुद्ध परिणाम चाहिये सो इसमें विलम्ब होजाता है।

उपर्यागत्यधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि-जो चौथे आदि ऊपरके गुणस्थानसे च्युत होकर सम्यग्मिथ्यात्वमें आया व पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें जावे तो वह उपर्या-

गत्यधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसका काल सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त होसकता है क्योंकि संक्लेश परिणामसे गिर कर तीसरेमें आए हुये व संक्लेशसे ही मिथ्यात्वमेंपहुँचे हुए जीवका इस गुणस्थानसे निकलनेमें विलम्ब नहीं लगता।

अधःसमायातोपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि--मिथ्यात्व गुणस्थानसे विशुद्ध परिणाम द्वारा तीसरे गुणस्थान में पहुंचे हुये और पश्चात् शीघ्र विशुद्धपरिणामसे अविरत सम्यक्त्वमें पहुंचने वाले जीवको तीसरे गुणस्थानमें अधः समायातोपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इसका भी काल पूर्ववत् जघन्य है।

अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि---मिथ्यात्व गुणस्थानसे तीसरे गुणस्थानमें पहुँचने वाले व पश्चात् मिथ्यात्वमें ही पहुँचने वाले जीवको तीसरे गुणस्थानमें अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इस का भी जघन्यकाल पूर्वचत् अल्प नहीं है क्योंकि इसे विशुद्धसे संक्लिष्ट परिणाम करना होता है।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण नहीं होता और न इस गुणस्थानमें आयुका बंध ही होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके यदि शीघ्र मरणकाल आजावे तो वह यदि मिथ्यात्व अवस्थामें आयु बांध चुका था तो मिथ्यात्वमें जावेगा और यदि सम्यक्त्वमें आयु बांध चुका था तो अवि-

रत सम्यक्त्वमें जावेगा और वहीं मरण करेगा अर्थात् नवी आयुका उदय पावेगा।

इस गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जी नहीं होता है अर्थात् तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जी तीसरे गुणस्थानमें नहीं पहुँचता। तीर्थंकरकी सत्तावाला सम्यक्त्वसे रहित कभी नहीं होता। केवल इस विवशता ही कि जबकि सम्यक्त्वसे पहिले नरकायुका बन्ध कर लिया हो पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व प्राप्तकर लेवे और तीर्थंकर प्रकृतिका भी बंध कर लेवे तो वह मरण समयमें सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है सो केवल ३ अन्तमूर्हूर्तको वियोग होता है। ऐसा जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें व सासादनमें तो किसी भी प्रकार नहीं जाता।

इस गुणस्थानमें सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, ६ पर्याप्तियां, १० प्राण, ४ संज्ञा, गति ४, इन्द्रियजाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग १०, वेद ३, कषाय २१ होती हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थामें ज्ञान ३ मिश्र होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके परिणाम सम्यक् व मिथ्या मिश्ररूप हैं अतएव उसके ज्ञानको भी मिश्रज्ञान समझना चाहिये।

इस गुणस्थानमें असंयम, दर्शन २, लेश्या ६, भव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञी, आहारक होते हैं। उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं।

मिश्रगुणस्थानमें ध्यान ९ होते हैं किन्हीं आचार्यों के मतसे ८ माने गये हैं। आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४ व आज्ञाविचय धर्म्य ध्यान।

मिश्रमें आस्रव—अविरति १२, कषाय २१; योग १० इस प्रकार सब ४३ होते हैं।

मिश्रमें भाव कमसे कम २१ और अधिकसे अधिक २८ होते हैं। नाना जीवोंकी अपेक्षासे ३२ भाव होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना घनांगुल के संख्यातवें भागसे लेकर १००० योजन तक की होती है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका निवास लोकके असंख्यातवें भागमें है।

इस गुणस्थानका काल अन्मुहूर्त ही है किन्तु नाना जीवकी अपेक्षासे वे अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग काल तक निरंतर वने रह सकते हैं।

इस लोकमें कोई भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न हो ऐसा समय आ सकता है तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातमें भाग काल तक।

मिश्र गुणस्थानमें समस्त बन्ध योग्य १२० प्रकृतियोंमें से ७४का ही बंध होता है, मिथ्यात्वमें व्युच्छिन्न १६

प्रकृति और सासादनमें व्युच्छिन्न अनंतानुबंधी४, निद्रा-निन्द्रा, प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धि, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, बीचके ४ संस्थान व ४ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्री-वेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत तिर्य-गायु ये २५ प्रकृति तथा तीर्थंकरप्रकृति, आहारकद्विक व मनुष्यायु और देवायु इन ४६ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता। यह नाना जीवकी अपेक्षासे है।

इस गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय नाना जीव की अपेक्षासे है मिथ्यात्वमें उदयव्युच्छिन्न ५ प्रकृति, सा-सादनमें व्युच्छिन्न अनंतानुबन्धी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रींन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये ६, सम्यक्प्रकृति, तीर्थ-करप्रकृति, आहारकद्विक, चारों आनुपूर्वी इसप्रकार २२ प्रकृ तियोंका उदय इस गुणस्थानमें नहीं है।

मिश्र गुणस्थानमें सत्त्व नाना जीवोंकी अपेक्षासे १४७ प्रकृतियोंका है। इसमें तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व नहीं एक जीवकी अपेक्षा नानाप्रकार के जीव होनेसे सत्त्वके बंध के व उदयके भी कुछ नानाप्रकार हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व, मिश्रसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, उभयदृष्टि, मिश्रदृष्टि ये सब एकार्थक है।

इसप्रकार सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं।

अविरत सम्यक्त्व

जहाँ सम्यग्दर्शन तो प्रकट होगया है परन्तु एक देश या सर्व देश किसी भी प्रकारका व्रत (संयम) न हुआ हो उसे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान कहते हैं और अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती जीवको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस गुणस्थानके विशेष परिज्ञानकेलिये प्रथम कुछ अविरत सम्यग्दृष्टियों के प्रकार कहते हैं।

आद्य प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि— अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व अनंतानुबंधी ४ इन ५ प्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करता है तब वह आद्य प्रथमोशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि-प्रथमोपशमसम्यक्त्वके परिणामसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व के प्रथम समयमें ही मिथ्यात्व के तीन भाग होते हैं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिसो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके पश्चात् यदि सम्यक् प्रकृतिका उदय आजावे और शेष ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम रहे इस स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीवको प्रथमोपशमसम्यक्त्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्यात्वागतवेदकसम्यग्दृष्टि—२८ की सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक् प्रकृतिका उदय व शेषका उदयाभावी

क्षय व उपशम रहे इस स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीवको मिथ्यात्वागतवेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि— सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके पश्चात् उक्त स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्ववाले जीव को सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

द्वितीयोपशमागत वेदक सम्यग्दृष्टि--उपशमश्रेणिसे उतरे हुए द्वितीतोपशमसम्यग्दृष्टिके चौथेसे सातवें गुणस्थानतकमें यदि सम्यक्प्रकृतिका उदय आजावे तो उसे द्वितीयोपशमागतवेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि-वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वक्षय प्रारंभ करता है तो अनंतानुबन्धीका विसंयोजनाक्षयकरके व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यक्प्रकृतिके अन्तिमस्थितिकांडकका घात कर चुकता है तबसे वहक्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्नहोनेके पहिले तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिकहलाता है

२८ सत्प्रकृतिकमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि-२८ मोह प्रकृतिकी सत्तावाले सादि मिथ्यग्दृष्टिके प्रथमोपशम-सम्यत्व उत्पन्न हो तो वह २८ सत्प्रकृतिक मिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि है।

उद्वेलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशसम्यग्दृष्टि २८ प्रकृतिकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्की उद्वेल

ना कर चुके तब २७ का सत्ता रहती है उस समय जिसके प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो उसे उद्वेलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि कहते है।

उद्वेलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्मिथ्यादृष्टि-जो सम्यक्प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर चुका है उसके २६ की सत्ता हो गई उसके ५ प्रकृतिके उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो तो उसे उद्वेलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्या गुणस्थानसे आये हुए वेदकसम्यग्दृष्टि को सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

२३ की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि अनंतानुबन्धीके क्षयके बाद जब मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय करदेता है तब वह ३३ की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि है।

२२की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि-उक्तजीव जब सम्याग्मिथ्यात्व काभी क्षयकरदेता है तब यह २२की सत्तावाला वेदकसम्यग्दृष्टि

क्षायिक सम्यग्दृष्टि-उक्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिका भी पूर्ण क्षय कर देता है तब वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। उसके २१ मोहप्रकृतिकी सत्ता है इस गुणस्थानमें।

द्वितीतोपशमसम्यग्दृष्टि-वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब सातों प्रकृतियोंका उपशम कर देता है तब उसे द्वितीयोपशम

सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इसके अनंतानुबन्धी की विसंयोजना ही होती है अतःयह २४ प्रकृतिकी सत्तावाला है।

अपर्याप्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि—द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके कालमें ही मरण होजावे तो वह केवल देवगतिमें ही उत्पन्न होता है और वह द्वितीयोपशम शरीरपर्याप्ति होनेसे पहिले नष्ट होजाता है ऐसे जीवको अपर्याप्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

अपर्याप्त वेदक सम्यग्दृष्टि— वेदक सम्यक्त्वमें मरण होजावे तो वेदक सम्यक्त्व अपर्याप्त अवस्थामें ही रहता है। यह जीव कर्मभूमिया व भोगभूमिया मनुष्य, भोगभूमिया तिर्यञ्च व वैमानिक देवमें ही मिलेगा। प्रथम नरकके नारकी भी अपर्याप्तअवस्थामें वेदकसम्यक्त्वग्दृष्टि रह सकते हैं वह वेदक सम्यक्त्वअपर्याप्त अवस्थाके बाद भी बना रह सकता है।

अपर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि— क्षायिक सम्यग्दृष्टि का मरण हो तो वह वैमानिक देवोंमें जन्म लेता है किन्तु यदि सम्यक्त्वसे पहिले नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु बांध ली हो तो क्रमशः पहिले नरक, भोगभूमिया तिर्यञ्च, भोगभूमिया मनुष्यमें उत्पन्न होंगे। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकी व देव है तो वह मनुष्यगति में ही उत्पन्न होगा। जीव अपर्याप्तके पश्चात् भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं। य

सम्यक्त्व कभी भी नहीं छूटता।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकवेदकसम्यग्दृष्टि अधःकरणके प्रथमसमयसे लेकर जब तक यह वेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्प्रकृतिमें संक्रमण करता है तब तक वह दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि है। दर्शनमोहोपशामनाप्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्ठी– अधःकरण के प्रथम समयसे लेकर समस्त दर्शनमोहका अन्तरकरण कर चुकने तक यह जीव दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है इसका द्वितोयोपशम उत्पन्न करनेसे पहिले मरण नहीं होता। द्वितीयोपशमके कालमें मरण भी हो सकता।

अनंतानुबन्धीविसंयोजक वेदकसम्यग्दृष्टि-दर्शनमोहकी क्षपणा करता हुआ जीव पहले करणत्रयद्वारा अनंतानु बंधीका विसंयोजन करता है उसे अनंतानुबन्धी विसंयो-सम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं। दर्शनमोहकी उपशामना करने-वाला वेदक सम्यग्दृष्टि अनंतानुबन्धी विसंयोजक वेदकसम्य-ग्दृष्टी है।

इसी प्रकार अन्य अविरतसम्यग्दृष्टियों की चिन्तना कर लेनी चाहिए। अब प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक व क्षायिक सम्यक्त्व होनेके अन्तर्मुहूर्त पहिलेकी अवस्थाका वर्णन क्रमशः करते हैं––

प्रथमोपशमसम्यक्त्व—जब जीवका अधिकसे अधि अर्द्ध पुद्गल परिवर्तनकाल संसारका शेष रहता है तब य सम्यक्त्व प्राप्त करने के योग्य है। सो इस कालेके भीतरव भी जब प्रायोग्यलब्धि केद्वारा सबकर्मों की अधिक अधिक स्थिति अन्तःकोटाकोटि सागरकी ही रह जाती तब जो भव्यजीव होगा वह अधःकरण परिणामको करत है। अधःकरण परिणामका विवरण सातवें गुणस्थानवं प्रकरणमें करेंगे। यहां प्रकरणवश प्रायोग्यलब्धिमें होनेवाले ३४ बंधापसरणों को कहते हैं।

प्रायोग्यलब्धिमें विशुद्धिके बढ़नेपर जीव अन्तः कोटाकोटी सागरकी स्थितिको बांधता है इसके पश्चात प्रत्येक अल्प अन्तर्मुहूर्तों में पल्यके संख्यातवें भाग कम कम कर करके बांधता है सो जब पृथक्त्वशत (३००व- ९०० के बीच) सागर कम कर देता है तब नरकायुका बंधविच्छेद हो जाता है इसी तरह प्रत्येक पृथक्त्वशत सा- गर कम होने पर निम्नलिखित बंधापसरण होते हैं—(२) तिर्थगायु, (३) मनुष्यायु, ४ देवायु, ५ नरकगति नर- कन्यानुपूर्वी, ६ सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण (संयुक्त), ७सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येक ८ वादर अपर्याप्त साधारण (सं०) ९वादर अपर्याप्त प्रत्येक (सं०) १० द्वीन्द्रियजाति, अपर्याप्त (सं०) ११ त्रीन्द्रिय जाति अपर्याप्त (सं०) १२ चतुरिन्द्रि जाति,

अपर्याप्त (सं०) १३ असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जाति अपर्याप्त सं०) १४ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त (सं०) १५ सूक्ष्म पर्याप्त साधारण (सं०) १६ सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक (सं०) १७ बादर पर्याप्त साधारण (सं०) १८ बादर पर्याप्त प्रत्येक एकेन्द्रिय आताप स्थावर (सं०) १९ द्वीन्द्रियजाति पर्याप्त (सं०) २० त्रीन्द्रियजाति पर्याप्त (सं०) २१ चतुरिन्द्रिय जाति पर्याप्त (सं०) २२ असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति पर्याप्त (सं०) २३ तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी उद्योत , २४ नीच गोत्र २५ अप्रशस्तविहायोगति दुर्भग दुःस्वर अनादेय , २६ हुंडक संस्थान असंप्राप्तसृपाटिका संहनन २७ नपुंसकवेद २८ वामनसंस्थान कीलितसंहनन , २९ कुब्जकसंस्थान अर्द्ध-नाराच संहनन , ३० स्त्रीवेद ३१ स्वातीसंस्थान नाराच संहनन ३२ न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान वज्रनाराचसंहनन ३३ मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिक शरीर औदारिक अङ्गोपाङ्ग , वज्रवृषभनाराचसंहनन .३४ असाता वेदनीय , अरति , शोक , अस्थिर , अशुभ , अयशःकीर्ति इस प्रकार प्रायोग्यलब्धिमें ३४ बार में उक्त ३४ प्रकार से बंधका विनाश होता है। इनमें कितनी ऐसी प्रकृतियां भी हैं जिनका सम्यक्त्व होने के बाद भी बन्ध होने लगता। परन्तु यहां इतने समयको बन्ध रुक जाता है। अभव्य भी प्रायोग्य लब्धि पाकर इतना कार्य कर सकता है वह आगे

नहीं चलता।

इस प्रकार बंधापसरणों को करके सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त विशुद्ध भव्य मिथ्यादृष्टि अधःप्रवृत्तकरणको कर सकता है पश्चात् अपूर्वकरण पुनः अनिवृत्तिकरण परिणाम को करता है अपूर्वकरणका वर्णन ८ वें गुणस्थानमें व अनिवृत्तिकरणका वर्णन नवमें गुणस्थानके प्रकरणमें होगा।

अपूर्वकरणसे लेकर अनिवृत्तिकरणके संख्यात भाग कालतक जीव कर्मों कास्थितिघात अनुभागघात भी करता है पश्चा इसके अतिरिक्त अन्तरकरण भी करता है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त अनंतरकी स्थितिमें जो दर्शनमोहकर्म है उसको कुछको अन्तिममें आवली को छोड़कर पहिली स्थितिमें और कुछ को अन्तरकालकेबादकी द्वितीयस्थितिमें लादेता हैं इस कारण अब जिस समय उपशमसम्यक्त्व होगा उस समय स्थितिका दर्शनमोहही सत्तामें नहीं रहेगा। प्रथमस्थितिमें कर्म लाने को आगाल कहते हैं और द्वितीयस्थितिमें कर्म लानेको प्रत्यागाल कहते हैं।

अन्तरकरण कर चुकनेके पश्चात् उदयावली समाप्त होते ही प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता है और उस ही प्रथम समयमें उपशमको प्राप्त मिथ्यात्वके तीन भाग करता–कुछ मिथ्यात्वही रहजाता कुछ सम्यग्मिथ्यात्वरूप

परिणम जाता है, कुछ सम्यक्प्रकृतिरूप परिणम जाता है। अब यह प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है। इसकाकाल अन्तर्मुहूर्त है।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि—वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उक्त प्रकारसे अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणामोंको करता है किन्तु २ बार तीनों करणोंको करता है, पहिले तीन करण द्वारा अनंतानुबन्धीकी विसंयोजना (अप्रत्याख्यानावरण रूप कर देना) करता है और दूसरे करणत्रयों से उक्त प्रकारसे अन्तरकरण व उपशम करता है। यह जीव सातों प्रकृतियोंका उपशम करता है।

वेदकसम्यग्दृष्टि- प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि या द्वितीयो-सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्प्रकृति उदयमें आनेपर वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। २८ प्रकृतिकी सत्तावाले वेदकयोग्य-मिथ्यात्वके अनंतर भी वेदक सम्यग्दृष्टि होता है और उसे वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न करनेके लिये अधःकरण व अपूर्वकरण ये दो करण करना आवश्यक है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब दर्शन-मोहकीक्षयणा को उद्यत होता है तव वह पहिले करण-त्रयके द्वारा अनंतानुबन्धी कीविसंयोजना करके क्षय कर देता है पुनः करणत्रयके द्वारा मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्या-त्वरूपकरके और सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्व प्रकृति-

रूप करके पश्चात् तीनोंका क्षय करदेता है तब यह जं
क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। क्षायिक सम्यक्त्व का का
अनंत है यह कभी नष्ट नहीं होगा। इस सम्यक्त्वमें र
हुए संसारका काल कुछ अधिक ३३ सागरहै। यह आ
जिसभवमें क्षायिक सम्यक्त्व किया उसी भवसे या तीसरे भ
मोक्ष जाता है। यदि क्षायिक सम्यक्त्वसे पहले मनुष्या
बांधली हो या तिर्यगायु बांध ली हो तो भोगभूमिमें उत्प
होकर फिर देवमें जन्म लेकर पश्चात् कर्मभूमि होकर मो
जावेगा इस प्रकार चौथे भवसे जासकता है इससे अधि
भव किसी भी परिस्थितिमें नहीं हो सकते। सम्यक्त्वसे पह
नरकायु बांध ली हो तो नरकमें उत्पन्न होकर वहांसे मनुष
होकर मोक्ष चला जावेगा यहां भी तीसरे भव से मोक्ष
जावेगा।

क्षायिकसम्यक्त्वको वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही केवल
या श्रुतकेवलीके पादमूलमें उत्पन्न करता है। यदि व
स्वयं श्रुतकेवली हो तो बिना पादमूलके भी कर लेता है

इस गुणस्थानमें सैनीपंचेन्द्रिय पर्याप्त सैनी पञ्चे
न्द्रिय अपर्याप्त होते हैं। पर्याप्तियां ६ व ६ अपर्याप्तियां
प्राण १० व ७, संज्ञा ४ में कोई एक, जाति पञ्चेन्द्रिय
व काय त्रसकाय होते हैं।

इस गुणस्थानमें योग १३ होते हैं परन्तु एक जीवमें

४ मनोयोग ४ वचनयोग ये ८ तथा औदारिककाययोग या वैक्रियककाययोग इस तरह अपर्याप्तमें औदारिकमिश्र-काययोग या वैक्रियकमिश्रकाययोग ऐसे १ व कार्मणका-ययोगसहित २ होते हैं। एक समयमें एक योग होता है।

इस गुणस्थानमें वेद तीनोंमें, १ कषाय २१, एक जीव में योग्यतया १६ एकदा ८-७-६, होते हैं। ज्ञान २ या ३ उपयोगसे एकदा एक, असंयम दर्शनमें ३ या २ एकदा उपयोग से एक। लेश्या ६ एकदा एक। भव्यत्व। सम्य-क्त्वमें ३ एकदा एक संज्ञी। आहारक या नाहारक होते हैं।

इस गुणस्थानमें उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं, ध्यान ११ होते हैं किन्तु एकदा एक होता है। आस्रव ४६ होते हैं, एक जीवमें कमसे कम ९व अधिमसे अधिक १६ होते हैं।

इस गुणस्थानमें भाव ३६ होते हैं, एक जीवमें कम से कम २२ व अधिकसे अधिक २४ या २६ होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनाङ्गुलसे १००० योजन तक की है।

येजीव सब पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

इनका अवास क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है किन्तु उपपाद आदि प्रकारोंसे ८ बटे १४, व ८ बटा १२ राजू क्षेत्र इनके द्वारा स्पर्श किया हुआ है।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे शून्य कोई भी समय न हुआ न होगा। ये सर्वकाल पाये जाते हैं। किन्तु एक जीवः अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कमसे कम अन्तमु हू तक रहता है और अधिकसे अधिक [illegible] ३३ साग रहता है।

एक जीव असंयत सम्यग्दृष्टि अपने गुणस्थानः छोड़दे और पश्चात् इसी गुणस्थानमें आवेतो वह बीचः अन्तर कमसेकम अन्तमु हूर्त होगा व अधिकसे अधिक कु (अन्तमु हूर्तकम) अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तनकाल तक हो सकता

इस गुणस्थानमें गति आदिके अनुसार विविध : कार का कर्मोंका बंध, उदय व सत्त्व होता है किन्तु य विस्तारभयसे मात्र सामान्यालापसे बंधादिका वण करते हैं।

इस गुणस्थानमें बंध ७७ प्रकृतियोंका हो सकता १२० बंध योग्यमें प्रथमगुणस्थानीय बंधव्युच्छिन्न १६, f तीयबंधव्युच्छिन्न २५, इस तरह ४१ तथा आहारकशरी आहारकाङ्गोपाङ्ग इन ४३ का बंध नहीं होता।

इस गुणस्थानमें उदय १०४ प्रकृतियों का हो स ता है, १२२ बंधयोग्यमें प्रथम उदयव्युच्छिन्न ५, द्वित उदयव्युच्छिन्न ९, तृतीयउदयव्युच्छिन्न१, तीर्थंकर, आह कशरीर व आहारकाङ्गोपाङ्ग इन १८ प्रकृतियोंका उ

नहींहोता

इस गुणस्थानमें सत्त्व सामान्यालाप से १४८ है परन्तु द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके १४४ व क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १४१ प्रकृतियोंका है। गति आदिकी अपेक्षा तथ ाएक जीवकी अपेक्षा सत्त्व अनेक प्रकार से है।

इस गुणस्थान दर्शन मोहके उपशमका या क्षयो-पशमका या क्षयका निमित्त है इसलिये इसमें औपशमि-क भाव क्षायोपशमिक भाव व क्षायिक भाव होता है व निमित्त मोहका कहलाता है।

औपशमिक भावमें सम्यक्त्वघात५ककया७ प्रकृतियोंका उपशम क भावमें ७ प्रकृतिका क्षय है। क्षायोपशमिक भावमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी४ इन छह का उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम व सम्यक् प्रकृति का उदय है।

सम्यकत्त्वप्रकृतिके उदय से सम्यक्त्वका घात नहीं होता किन्तु चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं।

वेदक सम्यक्त्वके बाद जब द्वित ीयोपशम सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्वका कार्य शुरू हो जाता है तब क्षयो-पशममें कुछ विशेषता होती है जैसे कभी ४ का क्षय ३ का उपशम १ का उदय। कभी ५ का क्षय, १ का उपशम, १ का उदय आदि आदि।

द्वितीयोपशमका प्रारंभ करनेवाला अन्तरात्मा द्वितीयोपशय उत्पन्न करनेसे पहिले नहीं मरता।

क्षायिकसम्यक्त्का प्रारंभ करनेवाला अन्तरात्मा सम्यक्प्रकृतिका भी जब क्षय शुरू कर देता है उस समय से उसका मरण संभव है सो उस मरण कालने के चार भागोंमें मरण करे तो १-२-३-४ गतियोंमें से किसीमें उत्पन्न होकर वहां क्षय पूर्ण कर लेगा।

जीवका सर्व प्रथम उद्धारका प्रारंभ इसी गुणस्थान से होता है अनादि मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वके पश्चात् उसका सुधार हो तो यह गुणस्थान प्राप्त होता है उसे। यद्यपि ऐसा भी हो सकता है कि सम्यक्त्व व देशसंयम तथा सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ हो जावे तथापि सम्यक्त्व तो प्रथमोपशम होता ही है।

सम्यक्त्व बहुत अमूल्य निज वैभव है इसकी धारणा ही जीवके कल्याणका मंगलाचरण है। अनेक प्रयत्नसे इसकी प्राप्तिकेलिये पुरुषार्थ करो। इसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ सर्वप्रथम तत्त्वाभ्यास है इसके प्रसादसे स्व पर का भेद विज्ञान होगा, इसके पश्चात् परसे निवृत्ति व स्वमें रुचि होगी, पुनः समस्त अध्रुव भावोंको छोड़कर ध्रुव निज अभेद चैतन्य स्वभावमें गति होगी इस प्रयोगसे उत्पन्न आत्माकी सहज अनाकुलताका अनुभवन होगा। इस

निरतिचार सम्यग्दर्शन धारण करने व अन्याय एवं अभक्ष्यके त्यागको दर्शन प्रतिमा कहते हैं।

निरतिचार अणुव्रत ५, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४ इस प्रकार बारह व्रतोंके पालन करनेको व्रत प्रतिमा कहते हैं

प्रातः, मध्याह्न व सायं २ घड़ी से ६ घड़ी तक निरतिचार सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते

अष्टमी चतुर्दशीको यथाशक्ति निरतिचार प्रोषध पूर्वक उपवास करनेको प्रोषध प्रतिमा कहते हैं।

हरी बनस्पति, कच्चा फल आदि सचित्त वस्तुके खानेके त्याग करनेको सचित्तत्याग प्रतिमा कहते हैं।

कृत कारित अनुमोदनासे रात्रिभोजनके त्याग व दिनमें मैथुनवार्ताके त्यागको रात्रिभुक्ति या दिवामैथुन त्याग कहते हैं।

पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेको ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहते हैं

व्यापारादि आरंभके त्यागको आरंभत्याग प्रतिमा कहते हैं।

वस्त्र अल्प पात्रके अतिरिक्त सब परिग्रहके त्यागको परिग्रहविरति कहते हैं। ग्रहकार्यकी अनुमोदनाके त्यागको अनुमतित्याग प्रतिमा कहते हैं।

निमित्तसे बनाये गये आहारके ग्रहण न करनेके

नियमको उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कहते हैं। इसके २भेद हैं १ क्षुल्लक, २ ऐलक।

सम्यक्त्वके अनन्तर इस गुणस्थानके उत्पन्न करनेको पहिले अधःकरण अपूर्वकरण ये २करण अवश्यक हैं।

उपशम सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न करने केलिये पहिले ३ करण आवश्यक हैं।

वेदक सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न करने केलिये पहिले दो करण आवश्यक हैं।

उक्त आवश्यक करण परिणामका काल समाप्त होते ही जीव संयतासंयत हो जाता है।

संयमा संयम लब्धिके स्थान अनगिनते है, उनमें सर्व जघन्य स्थान किसीके भी नहीं होते उससे असंख्यात गुणे विशुद्ध संयमासंयम संयमासंयमसे मिथ्यात्वमें गिरनेके अभिमुख अतिसंक्लिष्टपरिणामी मनुष्यके होते हैं। यही संभव जघन्यसंयमासंयम है। इससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्व जानेके अभिमुख अतिसंक्लिष्ट तिर्यंच देशसंयतका संभव सर्वजघन्य है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जानेवाले तिर्यञ्चोंके होता है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जानेवाले मनुष्योंके होता है। मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले प्रथमसमयवर्ती वि-शुद्ध

संयतासंयत मनुष्यके उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान है मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले प्रथम समयवर्ती विशुद्ध संयतासंयत तिर्यञ्चके उससे अनंतगुणा हैं। असंयत वेदकसम्यक्त्वसे चढनेवाले प्रथमसमयवर्ती देशसंयत तिर्यञ्चके अनंतगुणा संयमासंयम स्थान है। उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान असंयत सम्यक्त्वसे चढ़नेवाले विशुद्ध प्रथम समयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है। उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़ते हुए अति-विशुद्ध द्वितीयसमयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है। उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़नेवाले अति-विशुद्ध द्वितीय समयवर्ती संयतासंयत तिर्यञ्चका है। उस से अनंतगुणा संयमा संयमस्थान सर्वविशुद्ध चढेहुए संयता-संयत तिर्यञ्चका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है। उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान सर्वविशुद्ध चढे हुए संयता-संयत मनुष्यका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है।

गिरते हुएके अंतिम स्थानका नाम प्रतिपात स्थान है। चढते हुएके प्रथम स्थानका नाम प्रतिपद्यमानस्थान है। इनके अतिरिक्त सब स्थानोंका नाम अप्रतिपात अप्रति पद्यमान स्थान है।

इस गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षासे गति नरक तिर्यञ्चमें १, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, मनोयोग ४,

वचनयोग ४ औदारिककाययोग १ इस प्रकार ६में एकदा एक, तीन वेदमें से १, १७ कषायमें से एकदा ७ या ६ या ५, ज्ञान ३ या १ में एकदा उपयोग से १, संयमासंयम, दर्शन २ या ३ में उपयोगसे एकदा १, लेश्या ३ शुभमें एकदा एक, भव्यत्व होता है।

इस गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रथमोपशम,द्वितीयोपशम, वेदक क्षायिक इनमें कोई एक होता है।

संयतासंयत जीव संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोगवाला होता है।

इस गुणस्थानमें ध्यान आर्तध्यान ४ रौद्रध्यान ४ धर्म्यध्यान ३ इस प्रकार ११ में एकदा एक होता है। आस्रव ३७ में कमसे कम ८ व अधिकसे अधिक १४ होते हैं। भाव ३१में एकदा २२ या २४ होते हैं।

संयतासंयत जीव सैनी पञ्चन्द्रिय पर्याप्त, छहों पर्याप्ति वाले, १० प्राणसंयुक्त व ४ संज्ञावाले होते हैं।

संयतासंयत जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे लेकर एक हजार योजन तक की होती है।

भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंचोंके यह गुणस्थान नहीं होता है। विदेहक्षेत्रमें, चतुर्थ पञ्चमकालके भरत ऐरावतक्षेत्रमें, लवणसमुद्र, कालोदधिसमुद्र, उत्तरार्द्ध स्वयंभूरमणद्वीप , स्वयंभूरमसणमुद्रमें जन्मे हुए सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्या-

म तिर्यञ्च व मनुष्यके यह गुणस्थान होता है। तिर्यञ्च
यह गुणस्थान जन्मलेनेके ३ अन्तर्मुहूर्त बाद हो सकता
परन्तु मनुष्यके जन्मलेनेके बाद ८वर्ष पश्चात् ही यह गुण
स्थान हो सकता है।

इनका आवास लोकके असंख्यातवें भागमें है
मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ६ बटा १४राजू लोक व
स्पर्श हो जाता है।

संयतासंयत जीव हमेशा कहीं न कहीं रहते है। ए
जीव संयतासंयत गुणस्थानमें कमसे कम एक अन्तर्मुहू
रहता है व अधिकसे अधिक तिर्यंचकी अपेक्षा ३ अन्तर्मु
हूर्त कम एक कोटि पूर्वतक व मनुष्यकी अपेक्षा ८वर्ष क
एक कोटि पूर्वतक रहता है।

एक जीव संयतासंयत गुणस्थानसे छूट कर अन
गुणस्थानमें रहे और फिर संयतासंयत गुणस्थानमें आ
तो इस बीचका अन्तर कमसे कम तो अन्तर्मुहूर्त र
सकता है और अधिकसे अधिक ११ अन्तर्मुहूर्त क
अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक रह सकता है।

देशविरतगुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा गति आदि
भेदसे नाना प्रकारके कर्मोंका बन्ध उदय सत्त्व है परन
विस्तारभयसे यहां सामान्यालापसे कहते हैं।

देशविरतमें ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है क्यों

यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १६, सासनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न अप्रत्याख्यानावरण ४ मनुष्यायुः, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभ, औदारिक शरीर ये औदारिकाङ्गोपाङ्ग १० व आहारकद्विक इन ५३प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है ।

इस गुणस्थानमें उदय ८७ प्रकृतियोंका रहता है क्योंकि यहां मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सासनव्युच्छिन्न ९, सम्यग्मिथ्यात्व १, असंयतमें व्युच्छिन्न नरकायु देवायु नरकगति देवगति वैक्रियक शरीर वैक्रियक अङ्गोपाङ्ग नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य, दुर्भग अनादेय, अयशःकीर्ति व अप्रत्याख्यानावरण ४ ये १७, तीर्थंकर व आहारकद्विक इन ३५प्रकृतियों उदय नहीं होता ।

संयतासंयतमें सत्त्व १४७ प्रकृतियोंका रहता है यहां नरकायुका सत्त्व नहीं है क्योंकि नारकीके तो यह गुणस्थान है नहीं और जिसने नरकायुका बन्ध करके सत्ता बना ली हो उसके भी यह गुणस्थान नहीं हो सकता ।

तिर्यञ्चके व्रतप्रतिमा तक के ही परिणाम हो सकते हैं। स्त्रीके ग्यारह प्रतिमामें ऐलक (आर्यिका) तक के ही परिणाम हो सकते हैं । पुरुषके ११ प्रतिमा व इस से आगेके भी परिणाम हो सकते हैं ।

इस प्रकार संयतासंयत गुणस्थानका वर्णन
अब छटवें प्रमत्तविरत गुणस्थानका कुछ निरूपण करत

प्रमत्तविरत गुणस्थान

जो सम्यक्त्व और मकलव्रत (महाव्रत) करि स
हो किन्तु संज्वलन कपायका तीव्र उदय होनेसे प्र
सहित हो वह प्रमत्तविरत गुणस्थान कहलाता है। इ
आहार करने, विहार करने, दीक्षा शिक्षा प्रायश्चित्त
आदि व इनके विकल्प करने रूप प्रमाद रहता है।

प्रमादके मूलमें १५ भेद हैं विकथा ४, कषाय
इन्द्रियविषय ५, निद्रा १, स्नेह १। इनके संयोगसे उ
भेद ८० हो जाते हैं—जैसे १ स्त्रीकथालापी क्रोधी स्प
नेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान्। २-भोजनकथाल
क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यादि
अर्थात् जब विकथा पूर्ण होगया तो विकथा शुरूसे ले अ
कषाय दूसरी ले और फिर जब इस प्रकार करते करते कष
पूरी हो जाय तब कषाय शुरूसे ले और इन्द्रियाँ
बदल दें। इसको सुगमतया समझनेकेलिये इस नकशे
आश्रय लेवें—

स्त्रीकथालापी	भोजनकथालापी	देशकथालापी	राजकथालापी
१	२	३	४
क्रोधी	मानी	मायावी	लोभी
०	४	८	१२

स्पर्शनेन्द्रियवशी	रसनेन्द्रि०	घ्राणेन्द्रि०	चक्षुरिन्द्रि०	श्रोत्रेन्द्रि०
०	१६	३२	४८	६४

निद्रालु
०
स्नेहवान्
०

इस नकशेसे जिस नम्बरका भेद निकालना हो ऊपर ऊपरसे नीचे तक पांचों खानों के १-१ ऐसे नाम ले लेवे जिसके आगेके (नीचे के) अंक जोड़नेपर उतनी संख्याका नम्बर आ जावेगा और जिस भेदका नम्बर जानना हो तो उन नामोंके नीचेके अंक जोड़ देवे जो संख्या आवे वह नम्बर हो जावेगा।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहके क्षयोपशमसे होता है इसलिये इसमें भाव क्षायोपशमिक है और निमित्त मोह है। इसमें प्रत्याख्यानावरण के वर्तमानका उदयाभावी क्षय, आगामीका सदवस्था रूप उपशम व संज्वलन कषायका उदय रहता है, यही

क्षयोपशमकी स्थिति है।

इस गुणस्थानमें जीव अप्रमत्तविरतगुणस्थानसे आता है तथा इस गुणस्थानवाला ७ वें, ५ वें, ४ थे, ३ रे, २ रे, पहिलेमें भी आसकता है।

इस गुणस्थानमें जिसके आहारकऋद्धि हो गई है उसके किसी सूक्ष्म तत्त्वमें शंका आदि होनेपर आहारक शरीर भी प्रकट होता है। यह आहारकशरीर जब तक वनते हुएमें अपर्याप्त रहता है तब तक इस आहारकमिश्र काययोगीको अपर्याप्त कहते है। इस स्थितिमें आहारकव र्गणा औदारिकवर्गणावोंके ग्रहणके निमित्त परिस्पन्द होता है।

इस गुणस्थानमें परिहारविशुद्धिधारीके परिहारविशुद्धिचारित्र होता है। इस जीवमें विहार करते हुए किसी भी प्राणीको रंच भी बाधा नहीं होती चाहे कोई प्राणी नीचे भी आजावे। विहार करते हुएमें अल्प समयको ७ वाँ गुणस्थान भी हो जाता है इस अपेक्षासे यह परिहार विशुद्धि सातवेंमें भी मानी गई है।

जिस मुनिके आहारक, परिहारविशुद्धि, मनःपर्यय ज्ञान, उपशमसम्यक्त्व, वेदद्वय (नपुंसकवेद स्त्रीवेद) में कोई वेद इन पांचमें कोई एक हो तो शेष ४ बातें नहीं होगी। इनका परस्परमें विरोध है। किन्तु उपशमसम्य

क्त्वके साथ नपुंसकवेद व स्त्रीवेद हो सकते हैं, तथा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वके साथ मनःपर्ययज्ञान हो सकता है।

इस गुणस्थानमें गति मनुष्य, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ११ पर्याप्तमें योग्यतया ६ व १० किन्तु एकदा एक, अपर्याप्तमें १ आहारकमिश्र काययोग, वेद ३ में कोई एक, परिहारविशुद्धि मनःपर्यज्ञान द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदृष्टि व आहारक वालेके पुरुषवेद, कषाय १३ एक जीव में ६-५ ४, ज्ञान २ ३-४, परिहारविशुद्धि व आहारकवालेके २-३, संयम २ परिहारविशुद्धि वालेके ३, दर्शन ३-२, लेश्या ३ में एक, भव्यत्व होते हैं।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व ये तीन होते हैं। किन्तु परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके वेदकसम्यक्त्व व क्षायिक सम्यक्त्व ये २ होते हैं।

इस गुणस्थान वाले संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनो उपयोग वाले, निदान बिना ३ आर्तध्यान ४ धर्म्यध्यान इस तरह ७ ध्यानमें किसीके भी ध्याता होते हैं।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें २४ आस्रव होते हैं एक जीवमें ७-६-५ आस्रव होते हैं। भाव ३१ होते हैं, एक एक जीवमें कमसे कम २४ व ज्यादहसे २७ होते हैं।

प्रमत्तविरत साधुवोंके देहकी अवगाहना कमसे कम

३॥ हाथ अधिकसे अधिक ५२५ धनुष । अपर्याप्तिमें आ
हारकशरीर १ हाथका होता है ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ६
प्रकृतियोंका बंध होता है क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १
सासनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न १० व देशसंयत
व्युच्छिन्न प्रत्याख्यानावरण ४ कषाय व आहारकद्विक
५७ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ८
प्रकृतियोंका उदय रहता है क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छिन्न
सासनव्युच्छिन्न ६, मिश्रव्युच्छिन्न १, असंयतव्युच्छिन्न
देशसंयतव्युच्छिन्न प्रत्याख्यानावरण चार तिर्यग्गति तिर्य
गायु उद्योत नीचगोत्र ये ८ व तीर्थंकर प्रकृति इन ४१ प्र
तियोंका उदय नहीं होता ।

प्रमत्तविरत साधुवोंके सत्त्व १४६ प्रकृतियोंका
इनके नरकायु व तिर्यगायुका सत्त्व नहीं है । क्षायिकसम्य
ग्दृष्टि प्रमत्तविरतके १३६ का सत्त्व है इनके सम्यक्त्वघात
७ प्रकृतियां तिर्यगायु व नरकायु इन ६ प्रकृतियोंका स
नहीं है ।

प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवोंका निवास ढाई द्वीप
अन्दर ही है किन्तु अन्य अपेक्षाओं (मारणान्तिक समुद्घात
से मनुष्य लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र है व लोकका अस

ख्यातवां भाग ही स्पर्शन है।

प्रमत्तविरत साधु सदा होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा इस गुणस्थानका काल जघन्य तो एक समय है। यह समय मरणकी अपेक्षासे है। एक जीवका उत्कृष्ट काल इस गुण-स्थानमें अन्तर्मुहूर्त है।

एक प्रमत्तसंयत जीव अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें जाकर पुनः इसी गुणस्थानमें आवे तो इस जीवका अन्तर जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त होगा और अधिकसे अधिक दस अन्तर्मुहूर्तकम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकाल होगा।

इस गुणस्थानमें पुलाक, वकुश और कुशील ये तीन प्रकारके निर्ग्रन्थ हो सकते हैं।

इस गुणस्थानमें आचार्य, उपाध्याय और ये तीन ही परमेष्ठी होते हैं। ये परमेष्ठी पांच महाव्रत, तीन गुप्ति, पांच समिति का आचरण करते हैं। दश धर्मका पालन करते हैं इनका अधिक समय भावनावोंके चिन्तवनमें जाता है। २२ परीषहोंको समतासे जीतते हैं। बारह प्रकार का यथा-योग्य तप करते हैं। ये महात्मा जब प्रमादयुक्त होते हैं तब प्रमत्तविरत कहलाते हैं। पहिले प्रमादके १५ और अल्पविस्तारसे ८० कहे थे, उन्हें विस्तारसे कहा जावे तो ३७५०० भेद होते हैं वे इस प्रकार हैं—

स्त्रीकथा ०	अनंता०क्रोध ०	स्पर्शने ०	स्त्यान००	स्नेह
अर्थकथा १५००	अनंता०मान ६०	रसने०१०	निद्रानि०२	मोह
भोजन० ३०००	अनंता०माया१२०	घ्राणे०२०	प्रचला०४	
राजकथा ४५००	अनंतालोभ १८०	चक्षु० ३०	निद्रा ६	
चौरकथा ६०००	अप्र०क्रोध २४०	श्रोत्रे० ४०	प्रचला ८	
वैरकथा ७५००	अप्र०मान ३००	मनो० ५०		
परपाखं० ९०००	अप्र०माया ३६०			
देशकथा १०५००	अप्र०लोभ ४२०			
भाषाकथा१२०००	प्रत्या०क्रोध ४८०			
गुणबंध०१३५००	प्रत्या०मान ५४०			
देवीकथा १५०००	प्रत्या०माया ६००			
निष्ठुर० १६५००	प्रत्या०लोभ ६६०			
परपैशू० १८०००	संज्व०क्रोध ७२०			
कंदर्पकथा१९५००	संज्व०मान ७८०			
देशकाल०२१०००	संज्व०माया ८४०			
भंडकथा २२५००	संज्व०लोभ ९००			
मूर्खकथा २४०००	हास्य ९६०			
आत्मप्र० २५५००	रति १०२०			
परपरि० २७०००	अरति १०८०			
परजुगु० २८५००	शोक ११४०			
परपीड़ा ३००००	भय १२००			
कलह ३१५००	जुगुप्सा १२६०			
परिग्रह ३३०००	पुंवेद १३२०			
कृष्याद्य०३४५००	स्त्रीवेद १३८०			
संगीतव०३६०००	नपुंस०वेद१४४०			

इनमें पहिला भेद हुआ : कथालापी अनंतानुबन्धी-क्रो स्पर्शनेन्द्रियवशी गत: स्त्या द्धिगत: स्नेही।

दूसरा भेद भी इसी त केवल स्नेही ी जगह कहना मं

तीसरा भेद—स्त्रीकथाल अनंतानुबंधक्रोधी स्पर्शनेन्द्रि वशंगतो निद्रनिद्रागत: स्नेह इसी प्रकार क्रमसे लगाते जा न भेद नाम का नम्बर जानने श्रं नम्बरके नाम जानने की री पूर्वोक्त प्रकार है जैसी प्रमाद अस्सी भेद में कही गई थी।

यह सब प्रमाद पहिले गु

स्थानमें तीव्र है उससे ऊपर ऊपर क्रमसे मंद होता चला गया है।

प्रमत्तविरत नाम होनेसे इसके विशेष प्रमाद नहीं समझना। पहिले गुणस्थानसे छटे गुणस्थान तक सभी प्रमत्त है। छटे गुणस्थानके बाद प्रमाद नहीं रहता और छटेमें अत्यल्प प्रमाद रहता है। जो प्रमत्त होते हुए भी संयत है वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं। ३७५०० भेद में प्रमाद हैं उनमें से कुछ ही प्रमाद इस गुणस्थानमें हैं। सब नहीं।

इस प्रकार प्रमत्तविरतका संक्षेपसे वर्णन करके अब अप्रमत्त संयतका वर्णन करते हैं–

अप्रमत्तविरत गुणवथान

जहां सम्यक्त्व एवं महाव्रत है तथा संज्वनकषाय के मंद उदयसे प्रमाद भी नहीं है उसे अप्रमत्तविरत गुण-स्थान कहते हैं।

इस गुणस्थान के २ भेद हैं स्वस्थान अप्रमत्तविरत व सातिशय अप्रमत्त विरत।

जो अप्रमत्तविरत आगे गुणस्थानमें जानेका अपूर्व परिणाम नहीं कर रहा और छटेमें जावेगा वह स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है। जो छटेमें न जासके किन्तु मरणकर

चौथे में जावेगा वह भी स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है। सात से छटे में छटे से सातवें गुणस्थानमें जानेका क्रम संख्या हजार बार बना रहता है।

जो श्रेणि चढ़नेके अभिमुख है वह सातिशय अप्रमत्त है।

सबसे पहिले जो अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता वह छटे गुणस्थान से नहीं होता क्योंकि छटे गुणस्थान जीव सातवें गुणस्थानसे ही आता है

पहिले, चौथे, पांचवें व छटे इन गुणस्थानोंके पश्चा ही अप्रमत्त संयत गुणस्थान होता है।

अप्रमत्तविरत साधु छटे में या अपूर्वकरण उपशमक अथवा अपूर्वकरण क्षपकमें जाता है। यदि मरण हो तो चौथे गुणस्थानमें पहुँचता है।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें नाना जीवोंकी अपेक्षा ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता हैं। यहां मिथ्यात्व व्युच्छिन्न १६ सामनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न १०, देशसंयत-व्युच्छिन्न ४, प्रमत्तसंयत व्युच्छिन्न अस्थिर अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक ये ६ इसप्रकार प्रमत्तान्त बन्धव्युच्छिन्न ६१ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है।

इस गुणस्थानमें नानाजीवकी अपेक्षा ७६ प्रकृति-

योंका उदय रहता है, क्योंकि इस में मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सानव्युच्छिन्न ६, मिश्रव्युच्छिन्न १, असंयतव्युच्छिन्न १७, देशविरतव्युच्छिन्न ८, प्रमत्तसंयत व्युच्छिन्न आहारक शरीर आहारकाङ्गोपाङ्ग स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचला प्रचला ये ५ इस प्रकार प्रमत्तान्त उदय व्युच्छिन्न ४५ व तीर्थ-कर प्रकृति इन ४३ प्रकृतियोंका उदय नहीं हो सकता।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें सत्त्व १४३ का हो सकता है यहां नरकायु व तिर्यगायु का सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तविरतके १३६ तक का ही सत्त्व हो सकता है इसके सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृति व नरकायु तिर्यगायु नहीं है।

सर्व प्रथम महाव्रत का परिणाम सप्तमगुणस्थानमें होता है : को सकलचारित्र सर्वदेशव्रत सरागचारित्र क्षा-योपशमिक चारित्र आदि नामोंसे कहते हैं, सो इस गुणस्थान मेंकदि मिथ्या दृष्टि आवे तो या तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ संयमको पावेगा या वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको पावेगा। प्रथमोपशमसम्यक्त्व केसाथ संयम पावेतो पहिले तीनों करण परिणाम आवश्यक है यदि वेदकसम्यक्त्व के साथपावे तो पहिले अधःकरणअपूर्वकरण ये दो परिणाम आवश्यक हैं। वेदक सम्यक्त्वके साथ संयम पानेवाला जीव २८की ही सत्तावाला था तीनों प्रकारके सम्यदृष्टि असंयत

व संयतासंयत गुणस्थान से संयमको पावे तो भी २ कर ही आवश्यक हैं।

सर्वप्रथम अप्रमत्तसंयत होनेके पश्चात् वह सातिश अप्रमत्तविरत अर्थात ऊपरके गुणस्थानोंमें जानेका पुरुष नहीं कर पाता किन्तु प्रमत्तविरत होता है और प्रमत्तवि से अप्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरतसे प्रमत्तविरत इस प्रकार ख्यात हजार बार परिवर्तन करता है।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही द्वितीयोपशमसम्य की निष्ठापना होती है। चौथे से सातवें गुणस्थानतक कोई भी वेदक सम्यग्दृष्टि जीव तीनों करण परिणामोंके अनंतानुबन्धीका विसंयोजन कर सकता है, अनंतानुबं के विसंयोजनके बाद अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसं अप्रमत्तसंयममें अनेक परावर्त करके अप्रमत्तसंयत तीनों करणोंके द्वारा दर्शन मोहका अन्तर करके उप कर देता है पुनः प्रमत्त विरत अप्रमत्तविरतमें अनेको वर्त करके कषायके उपशमकेलिये अधःकरण करता इस स्थितिमें यह जीव सातिशय अप्रमत्त कहलाता है

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत कषायोंके उप लियेभी अधःकरण कर सकता है। यदि कषायोंके उप कार्य करे तो उपशमश्रेणी पर चढ़ेगा व यदि कषायोंके लिये वह करण करे तो क्षयक श्रेणी चढ़ेगा। यह भी

तिशय अप्रमत्तविरत है यहां यह विशेष जानना कि क्षा-यिक सम्यक्त्वकी चौथे से सातवें तक में कहीं भी निष्ठा-पना होती है और उसमें भी पहिले करणत्रयसे विसंयो-जना-क्षय पश्चात् अल्प विश्राम करके दर्शनमोहका क्षय किया जाता है।

क्षायोपशमिक संयममें भी स्थान असंख्यात लोक प्रमाण है उनमेंसे सर्व जघन्य संयमस्थान उसके है जो अति-संक्लेश परिणामयुक्त मिथ्यात्वमें गिरनेवाला यह प्रमत्त-संयत जीव ही होता है। उससे अनन्तगुणे संयमका स्थान मिथ्यात्वमें जानेवाले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट संयम है।

संयमसे गिरने वाले सभी जीव प्रमत्तविरत समझ-ना चाहिये।

उस स्थानसे अनन्तगुणेसंयमका स्थान अतिसंक्लिष्ट अविरतसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले संयमी का जघन्यसंयम स्थान है इससे अनन्तगुणे संयमका स्थान योग्य संक्लिष्ट इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान है। यह भी प्रमत्तविरत है

उससे अनन्तगुणे संयमस्थान अतिसंक्लिष्ट सयम संयममें आने वाले संयमी का जघन्य संमस्थयान है। योग्-यसंक्लेशी इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान उससे अनंतगुणा है। यह भी प्रमत्तविरत है।

उससे अनंतगुणा संयमस्थान आर्यखन्डसे उत्पन्न

हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथमसमयमें हो
है। यह अप्रमत्तविरत है।

उससे अनन्तगुणा संयमस्थान म्लेच्छ खंड
उत्पन्न हुये मिथ्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथम सम
में होता है

इससे अनंतगुणा देशसंयमी म्लेच्छ मनुष्यके सं
के होनेके प्रथम समय में होता है।

इससे अनन्तगुणा संयमस्थान देशसंयत आर्यमनु
के संयत होनेके प्रथम समय में होता है।

अप्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थान भी असंख्यातलं
प्रमाण है।

अप्रमत्तगुणस्थानमें सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त,
पर्याप्तियां। १० प्राण, संज्ञा तीन, गति मनुष्य, जा
पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ९ में एकदा एक, ३ वेद
कोई एक, १३ कषायमें एक जीवके ६-५-४, ज्ञान
-३-२ में उपयोग एकदा १, संयम २-३, दर्शन २-३
उपयोगसे १, लेश्या ३ में एक, भव्यत्व, होते हैं।

अप्रमत्तविरतके सम्यक्त्व ३ में एक होता है। पर
परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके उपशमसम्यक्त्व कोईस
नहीं होता है।

अप्रमत्तसंयत संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनो उप

गवाला , ७ ध्यानों में किसी का भी ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्रव २२ होते हैं उनमें एक जीवके ५ या ६ या ७ होते हैं। भाव ३१ होते हैं एक जीवमें एकदा क्रमसे २२ अधिक से अधिक २५ होते हैं।

यह गुणस्थान भी प्रत्याख्यानावरण के क्षयोपशम से होता है किन्तु विशेषता इतनी है कि संज्वलन कषायका मंद उदय रहता अप्रमत्त संयतके प्रत्याख्यानावरण का वर्तमान उदयाभावी क्षय व आगामी उदयमें आने योग्य प्रत्याख्यानावरण का सदवस्थारूप उपशम तथा संज्वलन-कषायका मंद उदय रहता है यही क्षयोपशम की स्थिति है अत : यह क्षायोपशमिक भाव है और निमित्त मोहका है

कषायोंके उपशम या क्षयकेलिये होने वाले अधः-करण परिणाम से पहिले सभी स्थितियोंमें अप्रमत्तविरत स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहलाता है। कषायोंके उपशम या क्षयकेलिये होनेवाले अधःकरण में सातिशय अप्रमत्त-विरत कहलाता है। यहां यदि उपशमका कार्य प्रारम्भ हो तो उपशम श्रेणि चढेगा और यदि क्षयका कार्य प्रारंभ हो तो क्षपक श्रेणि चढेगा

क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों में किसी भी श्रेणिपर चढ़ सकता है परन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि ही चढ़ सकता है।

अब प्रकरणवश अधःकरण का स्वरूप कहते हैं
जहां ऊपरिमसमयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके स
यवर्ती जीवोंके परिणामके सदृश हों उसे अधःकरण क
है। विषम अवस्थाके अनन्तर सम अवस्थामें जानेके लि
यह पहिला यत्न है।

अधःकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। जैसे प्र
ममय में अनेक जीवों ने अधःकरण परिणाम किया
योग्य जघन्य और उत्कृष्टकी सीमा करके नाना प्रका
उनके परिणाम हुए फिर उन जीवों ने अगले समय प्र
किया और परिणाम बढ़े उस समय अन्य जीवों ने प्र
प्रवेश किया इस तरह सब आगे बढ़ते जाते और अ
जीव प्रवेश करते जाते १ यहां प्रवेश करने वाले जीः
जघन्य परिणामके अतिरिक्त अन्य परिणाम कुछ ऊ
वालोंसे मिल जाते हैं अर्थात् उनके सदृश हैं। तथा
तीयादि समय वालोंके परिणाम भी कुछ ऊपर वाल
परिणामके समान है। अन्तिम समय का उत्कृष्ट परिण
नीचेके समान नहीं। इस तरह अधःकरणके सर्वज
व सर्वोत्कृष्ट परिणामके अतिरिक्त शेष परिणाम कुछ
नीचे समयवालोंके समान रहते हैं। इसका दृष्टान्त
प्रकार है जैसे अधःकरण का काल १६ समय यहां प्र
समयके परिणाम के प्रकार ४ करें।

समय	प्र०खंड	द्वि.खं०	तृ०खं०	च०खंड	सर्वधन	
१६	५४	५५	५६	५७	२२२	चतुर्थनिर्वर्गणाका०
१५	५३	५४	५५	५६	२१८	
१४	५२	५३	५४	५५	२१४	
१३	५१	५२	५३	५४	२१०	
१२	५०	५१	५२	५३	२०६	तृतीयनिर्वर्गणाका०
११	४९	५०	५१	५२	२०२	
१०	४८	४९	५०	५१	१९८	
९	४७	४८	४९	५०	१९४	
८	४६	४७	४८	४९	१९०	द्वितीयनिर्वर्गणाका०
७	४५	४६	४७	४८	१८६	
६	४४	४५	४६	४७	१८२	
५	४३	४४	४५	४६	१७८	
४	४२	४३	४४	४५	१७४	प्रथमनिर्वर्गणाका०
३	४१	४२	४३	४४	१७०	
२	४०	४१	४२	४३	१६६	
१	३९	४०	४१	४२	१६२	

इस अधःप्रवृत्त करण में प्रथम समय की जघन्
विशुद्धि सबसे कम है उससे द्वितीय समयकी जघन्
विशुद्धि अनंत गुणित है। उससे तृतीय समयकी जघन्य
विशुद्धि अनन्त गुणित है इस प्रकार यह क्रम प्रथम नि
र्गणाकांडकके अन्तिम समयवर्ती जघन्य विशुद्धि तक
जाना चाहिये। जैसे दृष्टान्तमें चार समय प्रथम निर्वर्गणा
कांडकके हैं। तो तृतीय समयकी जघन्यविशुद्धिसे अनंत
गुणित चौथे समयकी जघन्य विशुद्धि हुई। अब उस
अनन्त गुणी विशुद्धि प्रथमसमयकी उत्कृष्ट विशुद्धि है।
ऐसा लौटकर नीचेके समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिपर आने
जहाँसे लौटना हुआ वहाँतक एक निर्वर्गणाकाण्डक होता
प्रथमनिर्वर्गण कांडकके अन्तिमसमय (४) की उत्कृष्टविशु
द्वितीयनिर्वर्गणाकांडकके प्रथमसमय (५) वर्ती जीवकी जघ
विशुद्धि है उससे अनन्त गुणी विशुद्धि द्वितीयनिर्वर्गणाकांड
द्वितीय समय (६) वर्ती जीवकी जघन्य विशुद्धि उससे
तृतीय (७)की, यह क्रम द्वितीयनिर्वर्गणाकांडकके अन्तिमस
की जघन्य विशुद्धि तक चला जैसे दृष्टान्तमें उससे अनन्तगु
विशुद्धि ८ वें समयवर्ती जीवकी है। इससे अनन्तगुण
विशुद्धि द्वितीयनिवर्गणाकांडकके प्रथम समय (५) वर्ती जी
की उत्कृष्ट विशुद्धि है। इस तरह आगे भी लगाते जाना

इसकी रचनाका प्रकार संदृष्टि द्वारा इस प्रका

जानना —संदृष्टिमें सर्वधन ३०७२ है, समय गच्छ १६, चय ४, संख्यात का प्रमाण ३ व निर्वर्गणाकाण्डक ४ है।

पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं—पद १६×१६=२५६ ×३ संख्यात=७६८। ३०७२÷७६८=४ चय अथवा आदिधनोनं गणितं पदोनपदकदिदलेन संभाजिदं-एक गच्छ कम, गच्छकी कृतिके आधेका आदिधनसे ऊन सर्वधनमें भाग देवे जो बचे वह चय है। जैसे-१६×१६=२५६—१६ =२४०÷२=१२०÷"३०७२—२५६२=४८०"=४ चय।

आदिधन से ऊन सर्वधन अर्थात् उत्तरधन (चयधन) व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्— एक कम गच्छके आधेमें चयका गुणाकरे फिर लब्धमें गच्छका गुणाकरे १६—१=१५÷२=७॥×४=३०×१६=४८० उत्तरधन।

आदिधन-३०७२—४८०=२५९२ आदिधन। अथवाप दहतमुखमादिधनम्—मुख१६२×पद१६=२५९२आदिधन।

अन्तसमयसम्बन्धी परिणामधन—व्येकपदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनम्—एक कम गच्छमें चयका गुणाकर उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे। जैसे १६—१=१५×४=६० +१६२=२२२ अन्तिमसमयसंबंधी परिणामधन।

अनुकृष्टिचय— उर्द्धरचनाचयमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देवे—जैसे—४÷४=१ अनुकृष्टिचय (समयखंडोंमें बढ़नेवाला चय)।

प्रथमसमयके प्रथमखंडकाधन-चयभाजितं व्येकचय
र्धघ्नचयोधनमाद्यधनम्—एक कम चयके आधेमें चयका गु
करे जो लब्ध हो उतना प्रथमसमयके धनमें घटाकर उस
चयका भाग देवे—जैसे ४-१=३÷२=१।।×४=६ । १६२
६=१५६÷४=३६ प्रथमसमयके प्रथम खंडका धन ।

सर्वधन—मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि
मुख १६२+भूमि २२२=३८४÷२=१९२× गच्छ (प
१६=३०७२ सर्वधन ।

आद्यसमयधन-व्येकपदघ्नचयोनमंतिमधनम्-एक क
पदसे गुणित चयसे कम अन्तिमधन आद्यसमयधन है । १
१=१५×४=६० । २२२-६०=१६२ प्रथमसमयका धन

उक्त दृष्टि द्वारा अधःकरणके यथार्थ परिणामोंक
परिज्ञान कर लेना चाहिये ।

अधःकरण निम्नलिखित अवसरोंपर होता है—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरकरण
लिये, २- वेदकसम्यक्त्वकेलिये ३ संयमासंयमकेलि
४द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसे पहिले अनंतानुबंधीकी विसंयोजन
लिये, ५ द्वितीयोपशमसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरक
केलिये, ३ सकलचारित्रकेलिये, ७ क्षायिक सम्यक्त्व
से पहिले अन्तानुबंधीकी विसंयोजनाके लिये, ८ क्षायि
सम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये, ९ चारि

मोहके उपशमकेलिये १० चारित्रमोहके क्षयकेलिये ।

इस अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही अधिकसे अधिक बार ३ अधःकरण हों तो निम्नप्रकार होंगे — १ द्वितीयोपशम कोअनंतानुबंधीकीविसंयोजना केलिये, २ द्वितीयोपशमको दर्शनमोहके अन्तरकरणकेलिये, ३ चारित्रमोहके उपशमके लिये पश्चात् श्रेणि चढकर गिरे तब वेदक सम्यक्त्व हो पश्चात् ४ क्षायिकसम्यक्त्वको अनंतानुबन्धीकी विसंयोजनाकेलिये, ५ क्षायिक सम्यक्त्वको दर्शनमोहकी क्षपणाकेलिये, ६ चारित्र मोहकेक्षयकेलिये।

ऐसा भी हो सकता है कि इस गुणस्थानमें एक बार भी करण न हो और कुछ काल रहकर नीचे गिर जावे। इस गुणस्थान पानेके लिये जो करण हुआ वह इससे पहिले प्रथम या चतुर्थ अथवा पञ्चम गुणस्थानमें हुआ था।

इस गुणस्थानमें किसी भी आयु का बंध नहीं होता किन्तु यदि प्रमत्तविरतमें देवायुका बंध प्रारम्भ किया हो और बंधकाल में अप्रमत्तविरत हो जावे तो देवायु बंध को पूर्ण कर देता है इस तरह इस गुणस्थानमें देवायुका बंध है।

यह गुणस्थान ध्यान अवस्थामें होता व आहार, विहार आदि करते हुए भी कभी अल्प अंतर्मुहूर्त को संयत के हो सकता है किन्तु निद्रामें यह गुणस्थान नहीं होता।

इस प्रकार अप्रमत्तविरत गुणस्थानका वर्णन कर
अब अपूर्वकरण गुणस्थानका वर्णन करते हैं-

अपूर्वकरण गुणस्थान

चारित्रमोहके उपशम या क्षयकेलिये अप्रमत्तविर
साधु जब अधःकरणकरके अपूर्वकरणमें पहुंचता है तो
अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे ही यह अपूर्वकरण गुणस्थान
होता है।

अपूर्वकरणका शब्दार्थ- अ=नहीं, पूर्व=पहिले
करण=परिणाम। अर्थात् जो परिणाम पहिले समयमें
उसके या अन्यके नहीं थे उन परिणामोंका होना।
इससे यह तात्पर्य निकला कि अपूर्वकरणमें विवक्षित सम-
यवर्ती मुनिके परिणाम इससे पहिले या अगले समयवर्ती
मुनियोंके परिणामसे मिलते नहीं है।

इस परिणाममें प्रतिसमय ६ कार्य विशेष होते रहते
हैं-प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धता, २ पूर्वबंधेहुए कर्मकी
असंख्यातगुणी स्थितिका घात, ३ असंख्यातगुणी कम
स्थितिके हो होकर ही नवीन कर्मोंका बंधना, ४ पूर्व बंधे
हुए कर्मोंका असंख्यात गुणा अनुभाग का घात, ५ असं
ख्यात गुणे कर्मवर्गणावोंकी निर्जरा व ६- पापप्रकृतियोंका
पुण्यप्रकृतियोंमें बदलना। अन्य स्थानोंमें भी अपूर्वकरण
परिणाम होता है वहाँ भी तद्योग्य ये छहों कार्य लग

लेना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके वर्तमान के उदयाभावी क्षय व आगामीके सदवस्थारूप उपशम व संज्वलनके मंद उदयसे व अपूर्व करण परिणाम द्वारा उत्पन्न होता है।

चारित्रमोहके क्षयोपशमकीस्थितिमें यह गुणस्थान उत्पन्न होता है इसलिये इसे क्षायोपशमिक कहा गया है। इस गुणस्थान वाला आत्मा नियम से क्षायिक चारित्र अन्तमु हूर्त में प्रकट करेगा तथा मोह (कषाय) क्षयकेलिये करण परिणाम कर रहा है इस लिसे क्षपक श्रेणिवाले अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसयतके उपचारसे क्षायिक भाव भी कहा गया है। तथा उपशम श्रेणिवाला अपूर्वकरण प्रविष्ट शुद्धि संयत मरणके अभावमें अन्तमु हूर्तमें नियमसे औपशमिक चारित्र प्रकट करेगा तथा कषायके उपशमके लिये करणपरिणाम कर रहा है इसलिये इसके उपचारसे औपशमिक भाव कहा गया है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक भाव है और द्वितोपशम सम्यग्दृष्टिके औपशमिक भाव हैं। इन सभी प्रसंगोंमें निमित्त मोहका है, या अर्थात् मोहके क्षयोपशमकी अपेक्षा हैं, कहीं उपशमकी अपेक्षा है और कहीं क्षयकी अपेक्षा है।

इस गुणस्थानमें सामान्यरूपसे ५८ प्रकृतियोंका

बन्ध होता है क्योंकि प्रमत्तान्तबन्धव्युच्छिन्न ६१ अप्रम विरत गुणस्थानमें बन्धव्युच्छिन्न देवायु इन ६२ प्रकृति का बन्ध नहीं होता है।

इस अपूर्वकरणगुणस्थानके कालके ७ भाग प्रथमभागमें ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। द्विती तृतीय, चतुर्थ व, पञ्चम व षष्ट भागों में ५६ प्रकृतियों बन्ध होता है इनमें निद्रा प्रचला इन दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। सातवें भागमें २६ प्रकृतियोका ब होता है। इसमें देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियकशरी वैक्रियकाङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर आहारकाङ्गोपाङ्ग, तैज शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्व्य वर्ण, गंध रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्तविहायोगति,, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्ये स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थकर और निम नामकर्मकी इन ३० प्रकृतियोंका बंध नही होता है।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों के उदय ७२ प्रकृति का रहता है इसमें प्रमत्तान्त उदयव्युच्छिन्न ४५ अप्रमत्तमविरत में उदयव्युच्छिन्न ४ व तीर्थकरप्रकृति ५० प्रकृतियोंका उदय नहीं रहता है।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४२, १३९, १३८, प्रकृ का होता हैं। इसमें जीव ३ प्रकारके हैं १ द्वितीयोप

सम्यग्दृष्टि उपशमक, २ क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमक, ३ क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपक। द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का विसंयोजन होजानेसे सत्त्व नहीं है और तिर्यगायु व नरकायु का पहिले से ही सत्त्व नहीं है सो ये ६ प्रकृतियां घट जानेसे १४२ का सत्त्व युक्त है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमकके अनंतानुबंधी ४ व दर्शन मोह ३ इन सात का सम्यक्त्वोत्पादमें ही क्षय हो जानेसे व तिर्यगायु नरकायुका पहिले सत्त्व न होने से ९ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है अतः उसके १३९ प्रकृतियोंका सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टिक्षपकके उक्त ९ व देवायु इन दस का सत्त्व नही है। अतः क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धि संयत क्षपक के १३८ प्रकृतियोंका ही सत्त्व है।

अब [illegible] अपूर्वकरणपरिणामों की विशुद्धि ज्ञात करनेकेलिये एक संदृष्टि लिखते हैं- इसकी रचनाकी पद्धति इस प्रकार है-

८	५५३ – ५६८
७	५३७ – ५५२
६	५२१ – ५३६
५	५०५ – ५२०
४	४८९ – ५०४
३	४७३ – ४८८
२	४५७ – ४७२
१	४५६तक
समय	योग- ४०९६

सर्वधन ४०९६, आदि धन३६४८, उत्तरधन ४४८ कालगच्छ ८, संख्यात प्रमाण४, चय १६।

चय-पदकृदि-संखेण भाजिदं पचयंगच्छकी कृति और संख्यातका सर्वधनमें भाग देने सेचय निकलता है-जैसे ८×८ =६४×४=२५६ । ४०९६÷ २५६=१६ ।

उत्तरधन-व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम् । कम गच्छके आधेमें चयका गुणा करे फिर उस लब्धमें गुणाकरे- ८-१=७÷२=३॥×१६-५६×८=४४८ उत्तर

अंतिम समयसम्बन्धी परिणामधन-व्येकपदं च भ्यस्तं तदादिसहितं धनम्- एक कम गच्छमें चयका गु कर उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे। जैसे ८-१= ×१६=११२+४५६ =५६८ अंतिमसमय परिणामध आद्यसमयधन-व्येकपदघ्नचयोनमंतिमधनम्-एक कम गच्छ

का गुणाकर उसे अन्तिमधनमें से कम कर देवे—८-१=७ ×१६=११२ । ५६८ -११२=४५६ ।

आदिधन-पदहतमुखमादिधनम् मुखमें गच्छका गुणाकरे ४५६×८= ३६४८ यह आदिधन है ।

सर्वधन-मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि- ४५६+५६८=१०२४÷२=५१२×८=४०९६ ।

अपूर्वकरण परिणाममें विशुद्धितारतम्य--इसके प्रथम समयमें जो जो जघन्य विशुद्धि है उससे अनंतगुणी विशुद्धि प्रथम समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है । उससे अनंत गुणी विशुद्धि द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि है । इस प्रकार अन्तिम समयके उत्कृष्ट परिणाम तक चलाना चाहिये ।

इस गुणस्थान में जीव सैंनी पञ्चेंद्रिय पर्याप्त होता इसके पर्याप्तियां ६, प्राण १० संज्ञा ४, गति मनुष्य, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, ९ योग, वेद ३, कषाय १२ में ६-५-४ में उपयोगसे एकदा १, संयम २, दर्शन ३-२ में उपयोग एकदा १, लेश्या शुक्ल लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ द्वितीयोपशम व क्षायिक, होते हैं ।

अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीव - आहारक, क्रमशः दोनों उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान के ध्याता होते हैं ।

इसमें आस्रव १३ किन्तु एक जीवके ७-६-५ होते हैं

भाव २८, एक जीव में २२--२३--२४ २५ होते हैं।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत के देहकी अवगाह॰ ३॥ हाथसे ५२५ धनुष तक की होती है।

इनका आवास ढाई द्वीप के भीतर ही है। च॰ लोकका असंख्यातां भाव हैं × व स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागमें होता है।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों में उपशामक जीवों॰ जघन्यकाल तो एक समय है व उत्कृष्टकाल अन्तमु॰ है। परन्तु क्षपक जीवोंका जघन्यकाल भी अन्तमुहूर्त और उत्कृष्टकाल भी अन्तमुहूर्त है। दोनों में नानाजी॰ में उक्त दोनों प्रकारका वैसा ही काल है।

क्षपक एकजीव में यह नहीं होता कि अष्टमगु॰ स्थान छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें जाकर पश्चात् अष॰ गुणस्थानमें आवे, क्योंकि क्षपकजीव आगे गुणस्थान॰ बढ़कर गुणस्थानातीत ही हो जावेगा।

सर्वजीवकी अपेक्षा यह अन्तर आसकता है कोई समय ऐसा रहे कि कोई भी जीव अष्टम गुणस्था॰ नहीं है तो ऐसा अन्तरकाल कमसे कम एकसमय॰ अधिकसे अधिक ६ माहका हो सकता है।

अष्टमगुणस्थानवर्ती उपशमक एक जीव अष्टमगु॰ स्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें रहे पश्चात् अष॰

गुणस्थान पावे इसबीचका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक २८ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल होता है। इसमें गिरतेके अपूर्वकरणसे अन्तर लिया है सो इसमे लगातार १२ अन्तर्मुहूर्त लगे फिर संसारभ्रमण करके अपूर्वकरण होगा उसके बाद निर्वाण पाने में १६ अन्तर्मुहूर्त लगेंगे इस प्रकार २८ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल अन्तर होता है।

नानाजीव उपशामकोंका अन्तर कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व (३ से ६ वर्षतक) होता है।

इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें उपशमक जीव ७ वें या ६ वें गुणस्थानसे आता है और यह अपूर्वकरणप्रविष्ट विशुद्धिसंयत जाता भी ७ वे में या ६ वें में, किन्तु यदि इस गुणस्थान के अनंतर ही मरण हो जाय तो चौथे गुणस्थानमें जाता है और नियमसे देवगतिमें ही उत्पन्न होता है। चढ़ते हुए में आठवेंके पहिले भागमें मरण नहीं होता।

क्षपक ७वें गुणस्थानसे ही अपूर्वकरणमें आता है, इसका मरण नहीं होता और न नीचे गिरना होताहै किन्तु विशुद्धिसे बर्द्धमान होकर ऊपरके गुणस्थानोंमें पहुंचता हुआ चारित्रमोहका क्षयकर व पुनः घातिया कर्मोंका क्षय करके

पश्चात् अघातिया कर्मोंका क्षय करके सिद्ध ही होवेगा। इस प्रकार अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षप का वर्णन करके अब अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्व कहते हैं —

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

जहाँ पूर्व व उत्तर समयवर्ती साधुवोंके परिणाम विल हों तथा समान समयवर्ती साधुवोंके परिणाम एक से हों, समान हों उन परिणामोंको अनिवृत्तिकरण कहते

अ=नहीं, निवृत्ति = भेद अर्थात् जहाँ समान स के परिणामोंमें भेद न हो उन करण अर्थात् परिणाम अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण के वर्तमान स्प के उदयाभावी क्षय, आगामी उदययोग्य उन्हीं स्पर्द्ध सदवस्थारूप उपशम व सज्वलन कषायके अनिमंद से अनिवृत्ति करण परिणामों द्वारा प्रकट होता है। क्षयोपशम की दशा वर्तमान है अतः इस गुणस्थानमें क्ष पशमिक भाव है परन्तु कषायके उपशम या क्षयके उपशमश्रेणिवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्तीका परिणाम हुआ है व २० कषायोंका इस गुणस्थ उपशम भी कर देता है तथा मरण न हो तो अवश्यही

पशमिक चारित्र प्रकट करेगा अतः औपशमिक भाव भी माना गया है। तथा क्षपक श्रेणिवाले अनिवृत्तिकरणबाद-रसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयतका यह परिणाम कषाय के क्षय के लिये प्रकट हुआ है और यह नियम से शीघ्र क्षायिक चारित्र प्रकट करनेवाला है व २० कषायोंका यहाँ क्षय भी कर देता है अतः इसके क्षायिक भाव भी कहा गया है निमित्त सबमें मोह का है अर्थात् मोहके क्षयोपशम से या उपशम व क्षयके कार्य से यह गुणस्थान प्रकट हुआ है।

इस अनिवृत्तिकरणमें समानसमयवर्ती साधुके परिणाम एक से ही होते हैं। यहाँ ऐसा भी नहीं रहा जैसेकि अपूर्वकरण परिणाममें होता था कि समानसमयवर्ती साधुओं के परिणाम मिल भो जावें और न भी मिलें। यहाँ तो सबके वैसा ही परिणाम होता है। इसके उदाहरण का निम्नलिखित नक्शासे अनुमान कर सकते हैं — इस गुणस्थान का समय अपूर्वकरण से आधा है।

समय	परिणाम
४	१३७६
३	१३१२
२	१२४८
१	११८४

अतः दृष्टान्तमें ८समयके आधे ४ समय लिये हैं। इसमें दृष्टान्त पहिले समयवर्ती जितने भी साधु होंगे उनसबके ११८४ डिगरी का परिणाम होगा व

दूसरे समयवर्ती साधुवोंका परिणाम १२८४डिगरीका होगा। इसीतरह अनिवृत्तिकरणके सभी समयोंमें सदृश लगाना चाहिये।

इस गुणस्थानमें संज्वलनकषायका अतिमंद उदय होते हुए भी सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होनेवाले संज्वलन सूक्ष्मलोभ के मुकाबिले अधिक है अतः इस गुणस्थान को बादरसाम्पराय भी कहते हैं। वैसे बादरसाम्पराय पहले गुणस्थानसे लेकर नवमें गुणस्थान तक कहे गये हैं। जैसे असंयत पहिलेसे चौथे तक, प्रमत्त पहिले से छटे तक समझे जाते हैं।

अनिवृत्तिकरणबादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव के बंध २२ प्रकृतियोंका होता है क्योंकि प्रमत्तान्तव्युच्छिन्न ६१ व अप्रमत्तव्युच्छिन्न १, अपूर्वकरणव्युच्छिन्न ३३ इन ९८ प्रकृतियोंका यहाँ बन्ध नहीं है।

इस बंध प्रकरण में अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करना जिसमें पहिले भागमें बंध २२ का दूसरे भागमें बंध २१ का, यहाँ पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता। तीसरे भागमें बंध २०का, यहां संज्वलन क्रोधका बंध नहीं होता। चौथे भागमें १९ का बंध, इस भागमें संज्वलन मानका बंध नहीं होता। पांचवें भागमें १८का बंध होता है, इस भाग में संज्वलन माया का बंध नहीं होता।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है क्योंकि यहां प्रमत्तान्त उदयव्युच्छिन्न ४५ व अप्रमत्तव्युच्छिन्न ४ व अपूर्वकरणव्युच्छिन्न हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये ६ तथा तीर्थंकर प्रकृति इन ५६ प्रकृतियों का उदय नहीं है।

इस उदयप्रकरणमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करिये प्रथमभागमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है क्योंकि अपूर्वकरणव्युच्छिन्न हास्यादि ६ का उदय नहीं रहता। द्वितीय भागमें एक जीवकी अपेक्षा ६४ का उदय है इसमें जो जिस वेदके उदयसे चढ़ा है उसके उस वेदका उदय है शेष २ वेदका उदय नहीं। तृतीय भागमें उदय ६२ का है इसमें अवशिष्ट वेद का उदय नहीं है। चतुर्थ भागमें ६२ का है इसमेंसंज्वलन क्रोधका उदय नहीं है। पञ्चम भागमें उदय ६१ का है इसमें संज्वलन मानका उदय नहीं है, इसमें माया और बादर लोभकी उदय व्युच्छित्ति हो जाती है जिससे सिद्ध है कि यहीं तक संज्वलन बादर लोभ है आगे नहीं रहेगा।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४२ प्रकृतियों तक का है इसे विशेष रूपसे कहते हैं—अनिवृत्तिकरणबादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव ३ प्रकारके हैं— द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमक, २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक ३

क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपक। इनमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमकके १४२का सत्त्व है क्योंकि इसके विसंयोजित अनन्तानुबन्धी ४ व नरकायु, तिर्यगायु इन ६ का सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमकके १३६ का सत्त्व है क्योंकि इसके सम्यक्त्वघाती सात प्रकृति व तिर्यगायु नरकायुका सत्त्व नहीं है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अनिवृत्तिकरणबादरसाम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत क्षपक जीवके कालके ९ भाग करिये। इसमें प्रथमभागमें सत्त्व १३८ का है इसमें सम्यक्त्वघाती ७ प्रकृति व नरकायु तिर्यगायु देवायु इन १० का सत्त्व नहीं है। द्वितीयभागमें ११२ प्रकृतियोंका सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त १० व प्रथमभागव्युच्छिन्न नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, उद्योत, आताप, एकेन्द्रिय, स्थावर, साधारण सूक्ष्म स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला ये १६ प्रकृति इस प्रकार २६ का सत्त्व नहीं है। तृतीयभागमें ११४ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त २६ तथा द्वितीयभागव्युच्छिन्न अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान मायालोभ, ये आठ इस प्रकार ३४ का सत्त्व नहीं है। चतुर्थभागमें ११३ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३४ व तृतीयभागव्युच्छिन्न नपुंसक

वेद इस प्रकार ३५ का सत्त्व नहीं है। पञ्चमभागमें ११२ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३५ व चतुर्थभागव्युच्छिन्न स्त्रीवेद इन ३६ का सत्त्व नहीं है। षष्ठ भागमें १०६ प्रकृतिका सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३६ व पञ्चमभागव्युच्छिन्न हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा ये ६ इस प्रकार ४२ का सत्त्व नहीं है। सप्तमभागमें १०५ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ४२ व पुरुषवेद इन ४३ का सत्त्व नहीं है। अष्टमभागमें १०४ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ४३ व संज्वलन क्रोधइन ४४ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। नवम भागमें १०३ प्रकृतियोंका सत्त्व है,इसमें पूर्वोक्त ४४ व संज्वलन मान इन ४५ प्रकृतियोका सत्त्व नहीं है। इसी नवम भाग में संज्वलन माया की भी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जाती है जो आगे न रहेगी।

इस प्रकार नवमें गुणस्थानमें प्रकृतियोंका बंध उदय सत्त्व पृथक् पृथक् कहा इनको सम्मिलितरूपसे जाननेके लिये निम्नलिखित नक्शे में देखें—

भाग	सत्त्व	बंध	उदय
१	१४६,१४२,१३९,१३८	२२	६६
२	१४६,१४२,१३९,१२२	२२	६६
३	१४६,१४२,१३९,११४	२२	६६
४	१४६,१४२,१३९,११३	२२-२१	६५—६४
५	१४६,१४२,१३९,११२	२२-२१	६४—६३
६	१४६,१४२,१३९,१०६	२१	५३
७	१४६,१४२,१३९,१०५	२१-२०	६३
८	१४६,१४२,१३९,१०४	--१९	६२
९/1	१४६,१४२,१३९,१०३	१९-१८	६१
९/2	१४६,१४२,१३९,१०२	१८	६०

सब भाग इसमें ९ दिखाये हैं, सब भागोंमें १४६, १४२, १३९के सत्तावाले तक साधु पाये-जा सकते हैं। किन्तु बंध व उदय इकहरा दिखाया जावे तो इसके भाग और भी हो सकते हैं तथा स्थितिकाण्डकघात आदि अपेक्षायें लगाई जावें तो असंख्यात भाग हो जाते हैं।

अब आगे बंध व उदयका इकहरापन दिखानेके लिये द्वितीय नक्शा लिखते हैं, यह नक्शा क्षपकश्रेणी वालेकी मुख्यतासे लिखते हैं सो उससे शेष दो प्रकार के जीवोंका बंध उदय समान जानना और सत्त्वमें सब स्थानों में १४६, १४२, १३९, भी समझलेना--

भाग	सत्त्व	बंध	उदय
१	१३८	२२	६६
२	१२२	२२	६६
३	११४	२२	६६
४	११३	२२	६५
५	११३	२२	६४
६	११३	२१	६४
७	११२	२१	६४
८	११२	२१	६३
९	१०६	२१	६३
१०	१०५	२१	६२
११	१०५	२०	६२
१२	१०४	२०	६२
१३	१०४	१९	६२
१४	१०३	१९	६२
१५/१	१०३	१८	६१
१५/१	१०२	१८	६०

इस नक्शे की सम्भालमें थोड़ा अन्तर रह गया हो तो पंडित जन इसे संभाल लेवें।

इस अनिवृत्तिकरणके समयमें स्थिति कांडक पल्यके संख्यातवे भाग है जिन का कि घात होता है। नवीन स्थिति बंध पहिले से भी पल्यके संख्यातवें भाग से हीन है। अनु भागकाण्डक शेषके अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। अंनतगुणश्रेणीरूपसे शेष शेषमें गुणश्रेणीका निक्षेपहै। इसही प्रथम समयमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका उपशामनाकरण, निधत्तिकरण,

निकाचितकरण ये तीन समाप्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् उत्तरोत्तर प्रकृतिस्थितियां अनुभाग, बंधस्थिति हीन होती जाती हैं निर्जरा असंख्यातगुणी होती है।

जब अनेकस्थितिबंधसहस्र बीत जाते हैं तब वीर्यान्तरायका अनुभागबंध देशघाती होजाता है ,मोहनीय का स्थितिबंध शेष ६ कर्मोंसे भी थोड़ा होता है उससे असंख्यातगुणा ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबंध है: वेदनीय का स्थितिबंध कुछ अधिक है।

क्षपक श्रेणीमें मोहनीय कर्मके बंध उदय सत्त्वके थानों के क्रमसे निम्न प्रकारसे भाग होते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि अनिवृत्तिकरण क्षपक साधुके पहिले ५ का बंध, २का उदय, २१ का सत्त्व रहता है। बादमें ५ का बंध, २ का उदय, १३ का सत्त्व रहता है।

भाग	बंध	उ०	सत्त्व
१	५	२	२१
२	५	२	१३
३	४	२	१३
४	४	२	१२
५	४	२	११
६	४	१	५
७	४	१	५
८	४	१	६
९	३	१	४
१०	३	१	३
११	२	१	३
१२	२	१	२
१३	१	१	२
१४	१	१	१

बादमें ४ का बंध, २ का उदय, १३ का सत्त्व रहता है।
बादमें ४ का बंध २ का उदय, १२ का सत्त्व रहता है।
बादमें ४ का बंध, २का उदय, का११ सत्त्व रहता है।
बाद में ४ का बंध, १का उदय ११ का सत्त्व रहता है।
बादमें ४ का बंध, १ का उदय ५ का सत्त्व रहता है।
बादमें ४ का बंध, १ का उदय, ४ का सत्त्व रहता है।
इस प्रकार शेष आगेके हिस्सोंमें भी लगा लेना चाहिये।

इस स्थितिके पश्चात् संख्यात स्थितिबंध सहस्र बीत जानेपर अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, संज्वलन ४ इन बारह कषायोंका व ९ कषायोंका अन्तरकरण करता है, किन्तु यहाँसे क्षपक इनका क्षपणा संबंधी कार्य—संक्रमण आदि करने लगता है। एक उपशामनामें हीन हीन होने वाले संख्यात स्थितिबंध सहस्र बीत जाते हैं।

उपशमश्रेणीमें प्रकृतियोंके उपशान्त होनेका क्रम इस प्रकार है—१—नपुसंक वेद। २— स्त्रीवेद। हास्यादि छह व पुरुषवेद का बहुभाग। ४ पुरुषवेद का एक समय प्रबद्ध है ५ अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरणके क्रोधका संक्रमण करके संज्वलन क्रोध। ६अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरणके मानका संक्रमणकरके संज्वलन मान७अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणकी मायाका संक्रमण करके

संज्वलनवादर लोभ।

क्षपक श्रेणिमें प्रकृतियोंके क्षय होने का क्रम इस इस प्रकार है-१स्त्यानगृद्धयादि तीन व नरकगत्यादि तेरह ये १६प्रथमभागीयसत्त्वव्युच्छिन्न प्रकतियां। २-अप्रत्याख्यानावरण चार व प्रत्याख्यानावरण चार ये ८। ३-नपुंसकवेद।४ स्त्रीवेद। ५ हास्यादि ६। ६-पुरुषवेद। ७ संज्वलनक्रोध। ८ संज्वलन मान। ९ संज्वलन माया व वादरलोभ स्पर्द्धक।

इस क्षपक अन्तरात्माके उक्त ३६व क्षायिक सम्यक्त्व समय नष्ट होने वाली ७ तथा तीन आयुका सत्त्व जन्म से ही नहीं सो आयु ३ इस प्रकार ४६ प्रकृतियों का सत्त्व नष्ट हो चुकता है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होते हैं। इनके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, संज्ञा २व, मनुष्यगति, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ९, वेद ३ में से १ व अपगतवेद, कषाय ७ में से २ व १, ज्ञान ४, संयम २, दर्शन ३, शुक्ललेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ (क्षा०द्वि०) में एक होते हैं।

अनिवृत्तिकरणवादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव संज्ञी, आहारक, क्रमशः २ उपयोगवाले, पृथक्त्ववितर्क

ोचार शुक्लध्यान के ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्रव १६ में एकदा ३ व २, ाव २८ में ुकजीवके २५, २४, २३, २२ होते हैं।

इनके देहकी अवगाहना कम से कम ३॥ हाथ व धिकसे अधिक ५२५ धनुष तक की होती है।

इन का आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है क्षेत्र व स्पर्श ा लोक का असंख्यातवां भाग है

इस गुणस्थानकाकाल अन्तर्मुहूर्त है सातिशय अप्र-मत्तसे आधा काल अपूर्वकरणका है और अपूर्वकरणसे आधा काल अनिवृत्तिकरणका है इसमें उपशामक नाना व एक जीव का जघन्य काल एक समय है क्योंकि अनि-वृत्तिकरणमें चढने या उतरनेमें एक समय को आते ही भी मरण संभवहै और तव चतुर्थगुणस्थानहो जाताहै देव-गतिमें जन्म लेते हैं। उपशामक जीवोंका उत्कष्टकाल अन्त र्मुहूर्त है। क्षपक अन्तरात्मावोंमें नाना जीवोंमें भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त है तथा एक जीवमें भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

क्षपकश्रेणिवाले एक जीवका अन्तर नहीं होता क्यों कि क्षपकश्रेणिसे चढ़कर वह अन्त में गुणस्थानातीत हो जाता है दूसरीबार उसी गुणस्थान में नहीं आता। यही

पद्धति सब क्षपक गुणस्थानोंकी है।

नानाजीवकी अपेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा काल जबकि इस गुणस्थान में एक भी जीव न हो कम से कम एक समय होता है व अधिक से अधिक छह माह होता है।

उपशामक नाना जीवोंका जघन्य अंतर एक समय का होता है व उत्कृष्ट अंतर वर्षपृथक्त्वका होता है। एक जीव उपशामकका जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त है व उत्कृष्ट अंतर २६ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक का हो सकता है। इसमें ११ अन्तर्मुहूर्त तो अन्तरसे पहिले का है और १५ अन्तर्मुहूर्त अन्तर समाप्त करनेके पश्चात् के हैं।

संज्लन ४ कषायोंका कृष्टिकरण करके क्षय होता है सो लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टियां सूक्ष्म साम्परायिक कृष्टियोंमें पूर्णसंक्रमण कर लेती है वह नवमें गुणस्थान का अन्तिम समय है जिसके पश्चात् दशवां गुणस्थान प्रकट होता है।

नवमें गुणस्थानके इस अन्तिम समयमें संज्वलन लोभका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त व तीन घातियाकर्मोंका कुछ कम एक दिन प्रमाण तथा वेदनीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्मका स्थितिबंध कुछ कम एक वर्षप्रमाण रहजाता है। इस समय जो कर्म बंधे हुए थे उनकी स्थिति इसप्रकार

रह जाती है मोहनीयकी अन्तर्मुहूर्त , तीन घातियाकर्मोंका संख्यात हजार वर्ष, तथा नामकर्म गोत्रकर्म व वेदनीयकर्म इनका असंख्यात हजार वर्ष ।

इस परिस्थितिके पश्चात् बादरसाम्यराय गुणस्थान का व्यय और सूक्ष्मसाम्यराय गुणस्थान का उत्पाद एकही समयमें होता है । सभी गुणस्थानों की व सभी पर्यायों की यही पद्धति है कि पूर्वपर्यायका व्यय और उत्तरपर्यायका उत्पाद एक साथ होता है , अर्थात् पूर्वपर्यायका व्यय उत्तर पर्यायके उत्पादस्वरूप है और उत्तरपर्यायका उत्पाद पूर्व पर्यायके व्ययस्वरूप है । इस प्रकार अनिवृत्तिकरणबादर साम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपक का वर्णन करके अब सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का वर्णन करते हैं –

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान

जब केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभ रहजाता है तब उसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं , उस सूक्ष्मलोभके नाशके लिये जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं इसी स्थानका नाम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान है । इस गुणस्थानमें रहनेवाले अन्तरात्माका नाम सूक्ष्मसाम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक या क्षपक है ।

यहगुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमके संज्वलनसूक्ष्मकृष्टिगत लोभके उदय के निमित्तसे तथा

सूक्ष्मसाम्परायचारित्रपरिणामद्वारा होता है। इसमें निमित्त चारित्रमोह है अर्थात् चारित्रमोहका क्षयोपशम है या चारित्र मोहका उपशम है या चारित्रमोहका क्षय है। इसमें भाव सरागचारित्र होनेसे क्षायोपशमिक है किन्तु अवशिष्ट मोहके भी क्षयका यत्न है व अन्तमें अवशिष्ट सूक्ष्म लोभ का क्षय कर देता है अतः क्षायिक भाव है। उपशम श्रेणि में चढे हुए अन्तरात्माके सूक्ष्म लोभ के उपशमका यत्न है व अन्त में सूक्ष्म लोभका भी उपशम कर देता अतः औप-शमिक भाव है।

इस गुणस्थानमें प्रतिसमय अपूर्व परिणाम होते हैं, समानसमयवर्तियों के समान परिणाम होते हैं और सूक्ष्म साम्परायचारित्रकी विशेषता रहती है

इस गुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका होता है— ज्ञानावरणकी, ५ अंतरायकी ५, चक्षुर्दर्शनावरणादि ४, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय इन सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

इसगुणस्थानवर्ती जीवके उदय ६० प्रकृतियोंका है बादरसाम्परायान्त उदयव्युच्छिन्न ५+६+१×१७+८+५ +४+६+६×५१ तथा तीर्थंकर प्रकृति इन ६२ प्रकृतियों का उदय नहीं है।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीवके सत्त्व १४६,

१४२, १३९ या १०२ का सत्त्व है। इस गुणस्थानमें साधु ३ प्रकारके हैं १द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक, २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक, ३— क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक भी दो प्रकार हैं अनंतानुबंधीके उपशामक, २— अनंतानुबंधीके विसंयोजक। अनोपशमक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के १४६ का सत्त्व, है तिर्यगायु व नरकायुका सत्त्व नहीं है। अनविसंयोजक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के १४२का सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमकके १३९ का सत्त्व है इसके सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृति तथा तिर्यगायु व नरकायु इन ९ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकके नवमगुणस्थानव्युच्छिन्न ३६ प्रकृतियां तथा तिर्यगायु, नरकायु, देवायु व सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृतियां इन ४६ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होनेसे १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व है।

सूक्ष्मसाम्परायसंयत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है। इसके पर्याप्तियां ६, प्राण १०, संज्ञा ४, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ९, अपगतवेद, कषाय १ संज्वलनसूक्ष्मलोभ, ज्ञान ४, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, दर्शन३, शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायसंयत संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोग

वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके ध्याता होते हैं।
इस गुणस्थान मे आस्रव २ होते हैं। भाव २२ होते हैं
एक जीवके २१-२०-१६-१८ होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंके देहकी अवगाहना कमसे कम
३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुषकी होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है। क्षेत्र व
स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका काल उपशमक नाना
जीवोंकी अपेक्षा कमसे कम एक समय व उत्कृष्ट अन्त-
र्मुहूर्त है। एक जीव उपशमकका भी जघन्यकाल एक
समय व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्षपक नाना जीवोंका
व एक जीवका भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्ट
काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक एक जीवका अंतर नहीं होता। नाना
क्षपकों की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय व उत्कृष्ट
अन्तर ६ माहका होता है। उपशमक नाना जीवोंमें
जघन्य अंतर एक समय व उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।
उपशमक एक जीवका जघन्य अंतर तो अन्तर्मुहूर्तका होता
है और उत्कृष्ट अंतर २४ अन्तर्मुहूर्तकम अर्द्धपुद्गल परि-
वर्तन हो सकता है। इस में १० अन्तर्मुहूर्त अन्तर करण
से पहिले के है व १४ अन्तर्मुहूर्त अंतर समाप्तिके पश्चात्

शेष संसारके हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अंतिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातियाकर्मोंका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त ही होता है। मोहनीयका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय में पहिले समयसे ही नहीं है। नाम व गोत्रकर्मका स्थिति-बंध १६ अन्तर्मुहूर्त रह जाता है। वेदनीयकर्मका स्थिति-बंध २४ मुहूर्त ही होता है। इसके पश्चात् संज्वलन सूक्ष्मलोभका अभाव हो जाता है। उपशमश्रेणिवाले अन्तरात्मा के उसका उपशम होता है। क्षपक श्रेणिवाले के क्षयरूप अभाव होता है।

उपशमकका दसवें गुणस्थानसे ९ वें या ११ वें गुणस्थानमें व अनंतर मरण होजाय तो चौथे गुणस्थान में जाना होता है। तथा दसवेंमें आना ९वें या ११ वें में से होता है।

क्षपक दसवें गुणस्थानसे १२ वें गुणस्थानमें जाता है। और नवमें गुणस्थानसे दसवेंमें आता है।

इसप्रकार सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपकको बनाकर उपशान्तकषाय गुणस्थानको कहते हैं-

उपशान्तकषाय गुणस्थान

जिनके समस्तकषायें उपशान्त हो चुकी हैं उन्हें उपशा, न्तकषाय कहते हैं। दर्शनमोह ३ अनंतानुबंधी४का उपशम तो

श्रेणी चढ़नेसेही पहिले होगयाथा शेषका९वें१०वेंमेंहोगया इस प्रकार इनके समस्तमोहनीय कर्मका उपशम रहता है। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ है। ये जीव उपशान्तकषाय हैं, वीतराग हैं और छद्मकहिये ज्ञानावरण और दर्शनावरण इनमें स्थित हैं अर्थात् सर्वज्ञ औरसर्वदर्शी नहीं है।

इस गुणस्थानसे पहिले के सब गुणस्थान सराग छद्मस्थ कहलाते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त सब गुणस्थान कषाय के उदयकरि सहितहै और असर्वज्ञ व असर्वदर्शी हैं।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें परिणाम कषायरहित होनेसे पूर्ण निर्मल हैं परन्तु कषायोंका उपशम करके ये परिणाम पाये हैं अतः उपशमका काल समाप्त होते ही नीचे दशवें गुणस्थानमें गिरना पड़ता है और दशवेंसे भी ९वेंमें गिरता है इस परम्परासे ७ वें ६ वें तक तो गिरना ही पड़ता है आगे साधारण व्यवस्था है, चढ़ भी सकता व गिर भी सकता।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक गिरता ही रहे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है, यह फिर क्षपकश्रेणी चढ़ कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है यदिपकश्रेणी न चढ़े और मरण करे तव देवगतिमें ही उत्पन्न होगा।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें यदि मरण हो तो वह भी

देवगतिमें ही उत्पन्न होगा। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके बाद या तो वेदक सम्यक्त्व पाकर चौथे पांचवें सातवेंमें आ सकता है, या मिथ्यादृष्टि हो सकता है। किन्हीं आचार्यों के ध्यानसे वह सासादन गुणस्थानमें भी जा सकता है।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ११ वें से क्रम क्रमसे गिर कर सातवें छटवें गुणस्थानमें पहुंचते हैं वहाँ यदि सँभल जावे तो क्षयोपशमसम्यक्त्व पाकर पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करलेते हैं और क्षपक श्रेणी चढ़कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

उपशान्त कषाय गुणस्थानके कालके बीचमें ही आयुका क्षय होजावे तो चौथे गुणस्थानमें गिरना पड़ता है।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें आना केवल सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकसे ही होता है। इस गुणस्थानसे जाना भी दसवें गुणस्थानमें होता है किन्तु मरणकी अपेक्षासे चौथे गुणस्थानमें जाना होता है।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके उपशमसे हुआ है अतः इसमें औपशमिक भाव है और निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका उपशम है।

उपशान्त गुणस्थानसे गिरनेपर जैसे जैसे कार्यों से चढ़ा था वैसे वैसे अब हीनपरिणाम होता चला जावेगा और स्थितिबन्ध आदि जिस जगह जितना होता था प्रायः

वैसा ही उस स्थान में होता चला जावेगा अर्थात् बंध आदि बढ़ता चला जावेगा। उपशान्तकषाय गुणस्थानमें जीव समास एक सैनीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, पर्याप्तियां ६, प्राण १०, अपगतसज्ञता मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग, ९ में एकदा एक, अपगतवेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान ४-३-२ में उपयोगसे एक, यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोगसे एक, शुक्ललेश्या उपचारसे, भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें एक, संज्ञित्व आहारक होते हैं।

उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ अन्तरात्मा क्रमशः दोनों उपयोगवाले, पृथक्त्ववितर्कवीचारशुक्लध्यानके ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आश्रव ९ योग किन्तु एकदा एक, भाव २१ में २०- १९-१८-१७ होते हैं।

इनके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुष तक की होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर है। क्षेत्र स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

उपशान्तकषाय गुणस्थानका समय जघन्यसे एक समय है व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती जीव इस गुणस्थान

ो छोडकर अन्य गुणस्थानोंमें जाँय और पुनः आगे इसी
ुणस्थानमें पहुँचे तो इस बीचका अन्तर अर्थात् जितने
समय कोई जीव इस गुणस्थान में न मिले वह अन्तर जघ-
य तो एक समय है और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है। एकजी-
की अपेक्षा अन्तर जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्-
कृष्ट २२ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल है।
सर्में ६ अन्तर्मुहूर्त तो अन्तरसे पहिले इस गुणस्थानको
ीघ्र प्राप्त करनेमें लगे थे और उत्कृष्ट अन्तर करने के
श्चात् जब वह उस गुणस्थानको प्राप्त कर लेता है तब
नेर्वाण पाने में १३ अन्तर्मुहूर्त और लगते हैं सो इन २२
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकाल उत्कृष्ट अन्तर
ोता है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीय का है
सकी स्थिति कषाय न होने के कारण एक समयकी है
र्थात् उसका आस्रवमात्र है।

इस गुणस्थानमें उदय ५६ प्रकृतियोंका है सराग
युच्छिन्न ६२ व तीर्थंकर प्रकृति इन ६३ का उदय नहीं है

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४६, १४२, व १३६ का है
योंकि इसमें अनोपशामक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशम-
, अनविसंयोजक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक व
ायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक जीव होते हैं, क्षायिकसम्यग्-

दृष्टि क्षपक नहीं होते हैं ये दशवें तक हो थे और वे वहाँसे १२वें गुणस्थानमें पहुँचते हैं।

इस प्रकार उपशान्त कषाय गुणस्थानका वर्णन करके अब क्षीणकषायनामक बारहवें गुणस्थानका वर्णन करते हैं—

क्षीणकषाय

जहाँ समस्तकषायोंका क्षय हो चुका है उन निर्मल परिणामोंको क्षीणकषाय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ है कषायों का क्षय दशवें क्षपक गुणस्थानके अन्तमें हो चुका था अतः यह क्षीणकषाय है, रागद्वेषादि भावों से पृथक् है अत्यन्त निर्मल है किन्तु ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका क्षय न होने से छद्मस्थ है, अभी सर्वज्ञ व सर्वदर्शी नहीं है।

इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी अर्थात् ग्यारहों गुणस्थानवर्ती जीव छद्मस्थ हैं।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके क्षयसे प्रकट हुआ है अतःइसमें क्षायिक भाव है व निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका क्षय है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीयका है इस

की स्थिति एक समयकी है अथवा इसका ईर्यापथ आस्रव है

इस गुणस्थानमें उदय ५७ प्रकृतियों का है क्योंकि सरागव्युच्छिन्न ६२ प्रकृति व वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन और तीर्थंकर प्रकृति इन ६५ प्रकृतियों का उदय नहीं है तथा अन्त समय में ५५ प्रकृतियों का उदय है क्योंकि इस गुणस्थानमें उपान्त्य समय निद्रामें व प्रचला की भी उदयव्युच्छित्ति हो जाती हैं।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १०१ प्रकृतियोंका है क्योंकि अनिवृत्तिकरणव्युच्छिन्न ६६ प्रकृति व सूक्ष्मसम्परायव्युच्छिन्न संज्वलनलोभ व नरकायु, तिर्यगायु, देवायु, एवं सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृति इन ४७ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। तथा अन्तिमसमयमें ६६ प्रकृतियोंका सत्त्व है क्योंकि उपान्तसमयमें निद्रा व प्रचलाकी व्युच्छित्ति हो जाती है

क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ उत्कृष्टोत्कृष्ट अन्तरात्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनका स्थिति सत्त्व अन्तर्मुहूर्त कर लेता है इसके कर्मोंका स्थितिबंध व अनुभागबंध नहींहै केवल एक समयस्थितिक ईर्यापथ आस्रव केवल सातावेदनीय प्रकृतिकाहै।

इस गुणस्थानमें संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्त ही होते हैं। इनके पर्याप्तियां ६, प्राण १०, अपगतसंज्ञक, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, योग ६ में एकदा एक, अप-

गतवेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान ४-३-२ में उपयोगसे एक यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोग से एक, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं।

क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीव संज्ञी, आहारक, क्रमशः दोनों उपयोगवाले होते हैं।

इनके प्रवेशके समयसे कुछ समय तक तो पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्लध्यान होता है पश्चात् एकत्ववि..र्क अवीचार शुक्लध्यान होता है और अन्ततक यही एक द्वितीय शुक्लध्यान रहता है। एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानमें ये जिस योग व जिस जल्पसे जिस अर्थका ज्ञान करते हैं उसी प्रकार ध्यान रहता है उसके समाप्त हो. ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है। भावमन भी नष्ट होजाता है।

इस गुणस्थानमें होनेवाले अन्तरात्मावोंका आवास ढाई द्वीप के अन्दर है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

क्षीणकषायगुणस्थान का जघन्य व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इस गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा तो अन्तर है नहीं, क्योंकि इस गुणस्थानके पश्चात् वह जीव १३वें व पुनः १४वां गुणस्थान पाकर नियमसे निर्वाणको प्राप्त होगा, पुनः इस गुणस्थानमें आना संभव ही नहीं। किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर हैं अर्थात् ऐसा

लगातार कुछ समय होता है जब कि एक भी जीव क्षीण-कषाय गुणस्थानमें नहीं है। वह अन्तर काल जघन्यसे तो एक समय है और अधिकसे अधिक ६ माह है।

क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समय में यह कृत-करणीय कहलाने लगता है और उस समय ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण शेषके ४ व अन्तराय ५ इनके उदयकी व सत्त्वकी एक साथ व्युच्छित्ति कर देता है

इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थानका कुछ वर्णन करके अब सयोग केवली गुणस्थान की महिमा प्रकट करते हैं—

सयोगकेवली

चारों घातियां कर्मोंके क्षय होते ही वे अन्तरात्मा केवल-ज्ञान, केवलदर्शन, अनन्सुख एवं अनन्तशक्ति इस शिव चतु-ष्टयसे संपन्न जिनेन्द्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अरहंत, सकलपरमात्मा, सगुणब्रह्म आदि नामों से संज्ञित ईश्वर हो जाते हैं। इनके जबतक योग रहता है तब तक सयो-गकेवली कहलाते हैं। इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी गुण-स्थानवर्ती सयोगी है किन्तु छद्मस्थ हैं।

भव्यजीवों के भाग्यके निमित्तसे इनका विहार होता रहता है। ये इस पृथ्वीतलसे ५००० धनुष ऊपर रहते हैं

ये औपचारिक कारणोंसे २ प्रकारके होते हैं १

तीर्थंकरकेवली, २ सामान्यकेवली । तीर्थंकरकेवलीके समवशरण होता है, सामान्य केवली के गन्धकुटीकी रचना होती है। यह सब रचना इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर ऋद्धिकी विषेशतासे अन्तमुहूर्तमें कर देता है।

सयोगकेवली भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को उपदेश प्राप्त होता है। ये मूल ग्रन्थकर्ता कहलाते हैं। इनकी दिव्यध्वनि निरक्षरी अर्थात् अक्षररहित या सर्व अक्षरसहित होती है। जिसके निमित्तसे जीव अपनी योग्यतानुसार तत्त्व प्राप्त करते हैं। गणधर देव द्वादशाङ्ग की रचना करते हैं। गणधर देव चार ज्ञानके धारी हैं सो उनकी कृति अवश्य प्रमाणभूत है, साथ ही वह कृति सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिके निमित्तसे हुई है प्रामाणिकता की अमोघ पूर्ति सिद्ध है।

जिनेन्द्रदेवका ज्ञान केवल ज्ञान है अन्यनिमित्तोंकी इन्द्रियादिकी सहायतासे रहित आत्मीय अनन्तशक्तिसे प्रकट हुआ पूर्ण ज्ञान है।

जिनेन्द्रदेवके जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, आर्ति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, स्वेद, राग, द्वेष, और मरण ये अठारह दोष नहीं होते हैं। आयु का अन्त होनेपर इनका निर्वाण होगा।

सयोगकेवली होते ही इनका औदारिक शरीर परमौ-

दारिक हो जाता है-- धातुदोषरहित पुष्ट शरीर हो जाता है। इनके नख और केश नहीं बढ़ते हैं। ये कवलाहार नहीं करते हैं, इन्हें स्नातकनामक निर्ग्रन्थ भी कहते हैं।

सयोगकेवलीके केवल सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव होता है। उदय सातावेदनीयका रहता है, असातावेदनीयका भी सत्त्व हो तो वह उदयमें सातारूप परिणम जाता है किन्तु भगवानको सुख सातावेदनीयके उदयके निमित्त से नहीं है। उनका सुख आत्मीय सहज शाश्वत अनन्त है। वेदनीयके अतिरिक्त ४१ प्रकृतियोंका भी उदय रहता है छद्मस्थान्त उदय व्युच्छिन्न८० प्रकृतियोंका उदय नहीहै।तीर्थंकरप्रकृतिका इस गुणस्थानमें उदय होता है। जिन अन्तरात्माओंने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके तीर्थंकर प्रकृतिका उदय नहीं होता। परमात्माके तीर्थंकर प्रकृतिका उदय हो या न हो इससे उनके स्वरूपमें सुखमें माहात्म्यमें कोई अन्तर नहीं आता। जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं किया, उनके इस गुणस्थानमें व अन्य सभी गुणस्थानों में तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता।

सयोगकेवली, तीर्थंकरकेवली, सामान्यकेवली, मूककेवली, अन्तकृत्केवली, समुद्घातकेवली, उपसर्गसिद्धकेवली आदि अनेक प्रकार हैं परन्तु इन प्रकारोंसे उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता

सयोगकेवली, जिनेन्द्रके ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता है इनके अनिवृत्तिकरणव्युच्छिन्न ३६, सूक्ष्मसाम्परायव्युच्छिन्न १, क्षीणकषायव्युच्छिन्न १६ तथा नरकायु तिर्यगायु देवायु एवं अनंतानुबंधी ४व दर्शनमोहकी ३ इन ६३ प्रकृतियों का सत्त्व नहीं है। इस गुणस्थानमें जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त हैं। ये जीव सैनी नहीं रहे, ये सैनी असैनीपन से रहित हैं, फिर भी द्रव्येन्द्रिय पांचों होने तथा पर्याप्त होनेसे यह जीवसमास कहा गया। पर्याप्तियां ६, प्राणवचनवल कायवल आयु व उछ्वास ये ४, बादरयोगका निरोध होने पर कायवल आयुये २ प्राण होते हैं।

सयोगकेवली जिनेन्द्रके अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ४–३–२ में एकदा एक, अपगतवेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान केवलज्ञान, यथाख्याचारित्र केवलदर्शन, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक-सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, युगपत् दोनोंउपयोग, अन्तमें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान, ईर्यापथआस्रव१, भाव १४ होते हैं।

सयोगकेवलीका आवास ढाई द्वीपके भीतर है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग व सर्वलोक है। इतना बड़ा क्षेत्र होनेका हेतु समुद्घात है, जिसका वर्णन आगे करेंगे।

सयोगकेवली गुणस्थानका काल नानाजीवों की अपेक्षा सर्वकाल है इसीलिये इनका अन्तरकाल भी नहीं है अर्थात् ऐसा समय न हुआ न होगा जब कि सयोगकेवली कोई न हो अर्थात् सयोगकेवली सदा होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा भी सयोगकेवली का अंतर नहीं है। क्योंकि वह निर्वाणही पावेगा सयोगकेवली पुनः बनना असंभव है। एक जीवकी अपेक्षा काल जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल गर्भदिन, ८ वर्ष ८ अन्तर्मुहूर्तकम १ करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है।

इन्द्र अनेक शोभावों सहित अन्यरचनावोंके अतिरिक्त ८ प्रातिहार्योंको स्वयं नियुक्तकर अपनेको धन्य समझता है। वे आठ प्रतिहार्य ये हैं–अशोकवृक्ष, सिंहासन, तीनछत्र, भामंडल, दिव्यध्वनिका प्रसार, पुष्पवृष्टि, ६४ यक्षोंद्वारा ६४ चमरोंका ढुलना, दुंदुभिनाद।

जहाँ प्रभु होते हैं वहाँ चारों तरफ १००-१०० योजन तक दुर्भिक्ष पीड़ा रोग नहीं रहता व क्षेमकी वृद्धि हो जाती है। प्रभुका गमन आकाशमें ही ऊपर होता है। इनमें राग द्वेषका अत्यन्त अभाव है। इनपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता। इनके कवलाहार नहीं है, शरीरके उत्तम परमाणु शरीर में आते रहते हैं अतः नोकर्माहार ही है। समस्तविद्यावों के ईश्वर ये प्रभु है।

नहीं बढ़ते हैं। इनके आंखकी पलक बंद नहीं होती है किन्तु सौम्यदृष्टिको लिये हुए पलक स्थिर रहते हैं।

इनके उपदेश, दर्शन, विहारसे अनेक भव्यजीवों को आत्मलाभ होता है। ये मोक्षमार्गके नेता कहे जाते हैं। आयुके अन्तके कुछदिन शेष रहजाने पर इनका विहार व उपदेश बंद होजाता है।

सयोग केवलीकी आयु जब अन्तमुर्हूर्त शेप रह-जाती है तब जो जो स्थितियां होती हैं उनका वर्णन क्रमशः करते हैं। इस अन्तमुर्हूर्त में कई अन्तमुर्हूर्त गर्भित हैं।

१—सयोगकेवली ८ समयमें केवलिसमुद्धात करते हैं। आयुकर्मकीस्थिति तो कम हो व शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तो अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान करनेकेलिये यह केवलिसमुद्धात होता है। मूलशरीरको न छोड़कर आत्मप्रदेशोंका शरीरसे बाहर फैल जानेको समुद्धात कहते हैं व केवलीके समुद्धातको केवलि-समुद्धात कहते हैं। प्रथम समयमें दण्डसमुद्धात करते हैं इसमें सयोगकेवलीके आत्मप्रदेश कुछकम १४ राजू नीचे-से ऊपर दण्डाकार फैल जाते हैं सो यदि केवली भगवान् पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख कायोत्सर्गासनसे हों तो शरीर प्रमाण वाहल्य (घेर) लेकर आत्मप्रदेश कुछ कम १४ राजू नीचेसे ऊंचे फैल जावेंगे और यदि भगवान् पूर्वाभिमुख

f उत्तरभिमुख पद्मासनसे हों तो शरीरप्रमाणसे तिगुने
ाहल्यको लेकर कुछ कम १४ राजू प्रमाण फैल जावेंगे
ह सब एक समयमें होजाता है।

इस समयमें आयुको छोड़कर तीन अघातियों कर्मों
ी स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं और
ावशिष्ट अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते
ं।

कपाट समुद्धातमें आत्मप्रदेश लम्बाईमें तो समुद्धात-
ी तरह रहेंगे किन्तु चौड़ाईमें यदि पूर्वाभिमुख केवली हैं
ो दक्षिण उत्तर दिशामें उतने वाहल्य (मोटाई) लिये हुए
ार्वत्र ७–७ राजू प्रमाण वातवलयको छोड़कर फैल जाते हैं
ादि केवली उत्तराभिमुख हों तो दण्ड समुद्धातके वाहल्यको
ाकर पूर्व पश्चिममें वातवलयको छोड़कर जहाँ जितनाव्यास
: उतने प्रमाण फैलजाते हैं। इसमें भी एक समय लगता
: इस कपाट समुद्धातमें औदारिक मिश्रकायोग होता है
स सययमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके असंख्या-
ा बहुभाग नष्ट होजाते हैं, अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवशिष्ट
अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट होजाते हैं।

इसके अनंतर प्रवरसमुद्धात होता है इसमें आत्मप्रदेश
ातवलयोंको छोड़कर सर्वत्र लोकमें फैलजाते हैं। इसका
ूसरा नाम मंथसमुद्धात भी है। फैलनेकी मुख्यतासे प्रत-

रनाम है और अघातिया कर्मोंके मंथनकी मुख्यतासे मथनाम पड़ा है। इसमें भी एक समय लगता है। इस समयमें तीन अघातियोंकी भी अवशिष्ट स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं। और अप्रशस्तप्रकृतियोंके अवशिष्ट अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट होजाते हैं। इसमें कार्माणकाययोग होता है।

इसके अन्तर लोकपूरणसमुद्धात होता है इसमें योगकी एक वर्गणा हो जाती है अर्थात् लोककाशके एक एक प्रदेशपर एक एक आत्मप्रदेश हो जाता है। वातवालयोंमें आत्मप्रदेश इस समुद्धातमें पहुंचते हैं। इसमें एक समय रहता है। इस समयमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थिति के असंख्यात बहुभाग नष्ट होजाते हैं। यहां भी कार्माणका योग रहता है। इस समय तीनों अघातियां कर्मोंकी स्थिति आयुसे मात्र संख्यात गुणे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह जाती है।

इसके पश्चात् आत्मप्रदेशोंका क्रमशः प्रतरसमुद्धात, दण्डसमुद्धात व मूलशरीरप्रवेश होता। है उतरते समयके समुद्धातोंमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके संख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं तथा शेष अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार केवलिसमुद्धातमें ८ समय लगजाते हैं–

१ दण्डसमुद्घातमें २ कपाटसमुद्घातमें, ३ प्रतरसमुद्घातमें, ४ लोकपूरणसमुद्घातमें, ५ प्रतरसमुद्घातमें, ६ कपाटसमुद्घातमें, ७ दण्डसमुद्घातमें, ८ मूलशरीरप्रवेशमें, । इस केवलिसमुद्घात द्वारा तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति प्रायः समान हो जाती है, अल्प ही अन्तर रह जाता है ।

२– इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर बादरकाययोग द्वारा बादरमनोयोगका निरोध हो जाता है । जिन केवलियोंके समुद्घात नहीं होता है उनके भी इतना ही समय सयोगकेवलिगुणस्थानका शेष रहनेपर योगनिरोधकी इस क्रियाका प्रारंभ होजाता है ।

३-अन्तर्मुहूर्त पश्चात् बादरकाययोगद्वारा बादर वचनयोगका निरोध होजाता है ।

४– अन्तर्मुहूर्त पश्चात् बादरकाययोगद्वारा बादर श्वासोच्छ्वासका निरोध होजाता है ।

५– अन्तर्मुहूर्त पश्चात बादरकाययोगसे बादरकाययोगका निरोधहोजाता है । जैसे काठ चीरनेवाला काठपर खड़े होकर काठ चीरता है । अथवा सूक्ष्मयोग द्वारा बादरकाययोगका निरोध करता है ।

६– अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्ममनोयोगका निरोध करता है ।

७– अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्म

चनयोगका निरोध करता है।

८- अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्म श्वासोच्छ्वासका निरोध करता है।

९- अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्मकाययोगका निरोध करता है।

इस अन्तर्मुहूर्त अपकर्षण द्वारा पूर्वस्पर्द्धकसे अपूर्वस्पर्द्धक, पुनः कृष्टियोंको। असंख्यातगुणितश्रेणिसे करता है। कृष्टिकरण समाप्त होनेपर पूर्वस्पर्द्धक और अपूर्वस्पर्द्धकनष्ट हो जाते हैं, पश्चात् कृष्टिगतयोगवाला होता है। कृष्टिगतयोगके समय सयोगकेवली भगवान् के सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्यान होता है, जिससे कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग नष्ट होते हैं और अन्तमें योगका निरोध हो जाता है इस समयमें नामकर्म, गोत्रकर्म व वेदनीय ये तीनों अघातियां आयुकर्मके समान होजाते हैं। यह समय सयोगकेवली का अन्तिम समय है। अन्तिम समयमें योगका पूर्ण सर्वथा निरोध, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानका व्युच्छेद व तीनों अघातियाकर्मोंका आयुकर्मके पूर्ण समान हो जा ये तीनों बातें एक साथ होती हैं।

यहगुणस्थान समस्त मोहके क्षयके पश्चात् होनेवाले शेष तीन घातियाकर्मोंके क्षयसे प्रकट होता है अतः इसमें भावक्षायिक भावहै परन्तु नाम पड़नेमें निमित्त योगहै अर्थात् यहाँ वीतराग सर्वज्ञ होते हुए भी जहाँ तक योगका सद्भाव

हता तहाँ तक सयोगकेवली कहलाते हैं।

इस प्रकार सयोगकेवलीका निरूपण अब अयोग केवली गुणस्थानके सम्बन्धमें कहते हैं--

अयोगकेवली

योगके नष्ट होते ही ये केवलज्ञानी सकल परमात्मा अयोगकेवली कहलाते हैं शरीरके क्षेत्रमें रहते हुए भी नके प्रदेशोंका शरीरसे वह सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि [illegible] नामकर्मके उदयका विनाश सयोगकेवली गुणस्थानके अन्तमें होजाता है।

समस्तघातिया कर्मोंके क्षय होजानेसे तथा अतिशीघ्र ही अघातिया कर्मोंके नाशकरनेवाले होनेसे इनके क्षायिक भाव होता है। किन्तु इस गुणस्थानके नाम होने का निमित्त योग अर्थात् योगका अभाव है।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ईर्यापथ आस्रव भी नहीं होता है उदय १२ प्रकृतियों का है १ वेदनीयकी, २ मनुष्यगति, ३ पञ्चेन्द्रियजाति, ४ सुभग, ५ त्रस, ६ बादर, ७ प्रत्येक, ८ आदेय, ९ यशःकीर्ति, १० तीर्थकरप्रकृति, ११ मनुष्यायु, १२ उच्चगोत्र। जिनके तीर्थकरप्रकृतिका बंध नहीं था उनके ११ प्रकृतिका ही उदय रहता है।

इस गुणस्थानमें सत्त्व ८५ प्रकृतियोंका ही होता है और जिनने तीर्थकरप्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके ८४

क्रुतियों का ही सत्त्व रहता है एवं जिन्होंने आहारकद्विक व तीर्थंकर प्रकृति इन तीनों का बंध नहीं किया था उनके ८२ प्रकृतियोंका ही सत्त्व रहता है और जिन्होंने आहारक द्विकका ही बंध नहीं किया था उनके ८३ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है किन्तु अन्तिम समयमें तीर्थंकरप्रकृतिबंध वालोंके १३ व शेषके १२ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है जिसके व्युच्छेदके पश्चात् वे सिद्ध परमेष्ठी होजाते हैं। उक्त ८५ प्रकृतियोंमें ७२ का तो अयोग केवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमें नाश होता है और अवशिष्ट १३ प्रकृतियोंका अयोगकेवलीके अन्तसमयमें क्षय होता है। वे प्रकृतियाँ इसप्रकार हैं –

अपान्त्यसमयव्युच्छिन्न ७२ प्रकृतियाँ–शरीर ५, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, अङ्गोपाङ्ग ३, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, स्थिर १, शुभ १, सुस्वर १, देवगति १, विहायोगति २, अस्थिर १, अशुभ १, दुःस्वर १, देवगत्यानुपूर्वी १, दुर्भग १, निर्माण १, अयशःकीर्ती १, अनादेय १, प्रत्येक १, अपर्याप्त १, अगुरूलघु १, उपघात १, परघात १, १, उच्छ्वास १, वेदनीयकी अनुदयरूप १, नीचगोत्र १।

अयोगकेवलीके अन्तसमय समयमें सत्त्वव्युच्छिन्न १३ प्रकृतियां ये हैं– वेदनीयकी १, मनुष्यगति १,

पञ्चेन्द्रिय जाति १, सुभग १, त्रस १, वादर १, प्रत्येक १, आदेय १, यशःकीर्ति १, तीर्थंकरप्रकृति १, मनुष्यायु १, उच्चगोत्र १ मनुष्यगत्यानुपूर्वी १ ।

अयोगकेवली भगवानके देहकी अवगाहना ३॥ हाथसे ५२५ धनुषतक की हो सकती है। इसगुणस्थानमें जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है (इसमें वस्तुतः सैनी तो हैं नहीं, पञ्चेन्द्रिय द्रव्यकी अपेक्षा से हैं व पर्याप्त पहिले ही हो चुके थे सो पर्याप्त देह जबतक रहता है पर्याप्त कहलाते हैं) पर्याप्ति ३, प्राण १ आयु, अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, अयोग, अपगतवेदत्व, अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र, केवलदर्शन, अलेश्य भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व होते हैं।

अयोगकेवली न संज्ञी हैं न असंज्ञी हैं, आहारक हैं युगपत् दोनों उपयोगवाले हैं ।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ध्यान प्रथमसमयसे अन्तसमयतक व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान है। इस ध्यानका दूसरा नाम समुच्छिन्नक्रियानियर्ती भी है। समस्त मन वचन काय योग श्वासोच्छ्वास नष्ट होजानेसे प्रदेशपरिस्पन्दक्रिया समुच्छिन्न अर्थात् व्युपरत याने निवृत्त होजाती है अतः इस ध्यानका नाम समुच्छिन्न क्रियानिवर्ति है। इस ध्यानमें एकाग्रचिन्तानिरोध नहीं होता है इसी

कार १३ वें गुणस्थानमें होनेवाले सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती
ध्यानमें भी एकाग्रचिन्तानिरोध ध्यान नहीं है परन्तु ध्यान
का कार्य निर्जरा होनेसे ध्यान संज्ञा उपचारसे है।

इस गुणस्थानमें आस्रव कोई नहीं, भाव १३ होते हैं।

अयोगकेवली भगवान् ढाई द्वीपके भीतर ही होते
। इनका क्षेत्र, स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है ।

इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है अथवा पांच
ह्रस्वस्वरोंके शीघ्र बोलनेमें जितना समय लगे उतना है।

अयोगकेवली एक जीवका अन्तरकाल नहीं है।
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा समय जब कि
कोई भी जीव अयोग केवली गुणस्थानमें न हो वह काल
जघन्यसे एकसमय है व उत्कृष्ट ६ माह होता है।

अयोगकेवली गुणस्थानका काल समाप्त होते ही
अर्थात् व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यानका अन्त या अवशिष्ट
सर्वकर्मक्षय होते ही अनन्तर गुणस्थानातीत सिद्ध हो जाते
हैं।

१४वें गुणस्थानवाले जीव अप्रमत्त एकस्वरूप वीत-
राग केवलज्ञानी अयोग क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं।

इस प्रकार १४वें गुणस्थानका वर्णन करके अब
परमाराध्य परमसाध्य सर्वथा निर्लेपअवस्थाको प्राप्त गुणस्था-
नातीत सिद्धभगवान्का निरूपण करते हैं

अतीतगुणस्थान

अतीत होगया है गुणस्थान जिनका उन्हें अतीत-गुणस्थान कहते हैं। सिद्धपरमेष्ठी गुणस्थानसे अतीत हैं अतःवे अतीतगुणस्थान कहलाते हैं, ये द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे रहित अनंतचतुष्टयसम्पन्न सूक्ष्म, बाधारहित, अप्रतिघाती होते हैं। इनके देह तो है नहीं किन्तु जिस देहसे मुक्त हुए हैं कुछ कम उस देहके प्रमाण आत्माके प्रदेश हैं।

अवशिष्ट कर्मोंसे मुक्त होते ही अनंतर समयमें लोक के अन्तमें पहुंच जाते हैं बीचमें एक भी समय नहीं लगता। जिस स्थानसे मुक्त हुए हैं उसी स्थानकी सीधके ऊपर लोकशिखरपर विराजमान रहते हैं। ये अत्यन्त निष्प्र-कंप सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनंतसुखी अनंतवीर्य होते हैं।

इस लोकके ऊपर भी ३ वातवलय है– घनोदधिवा-तवलय, २ घनवातवलय, ३ तनुवातवलय। यह घनोदधि-वातवलय २ कोशका मोटा है, घनवातवलय १ कोशका मोटा है, तनुवातवलय १५७५ धनुषप्रमाण मोटा है। यह तनुवातवलय दोनो वलयोंके ऊपर है यह, मोटाई प्रमाणा-ङ्गुलकी अपेक्षा है व्यवहाराङ्गुलकी अपेक्षा १५७५× ५००=७८७५०० धनुष प्रमाण बाहल्य है इतने मोटे तनुवातवलयमें बिलकुल ऊपर ३॥ हाथ मोटेमें जघन्य

अवगाहनावाले सिद्ध है और ५२५ धनुष मोटेमें उत्कृष्ट अवगाहनावाले सिद्ध हैं।

जो अयोगकेवली जिस आसनमें कर्मोंसे मुक्त हुए हैं उसी आसनके आकारसे सिद्धलोकमें विराजमान हो जाते है

अतीतगुणस्थातमें अतीतजीवसमास, अतीतपर्याप्ति, अतीतप्राण, अपगतसंज्ञ, गतिरहित, अतीतेन्द्रिय, अकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञानी, संयम असंयम संयमासंयम तीनोंसे रहित, केवलदर्शनी, अलेश्य, भव्यत्व अभव्यत्व दोनोंसे रहित, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी असंज्ञी दोनोंसेरहित, अनाहारक, युगपत दोनों उपयोगवाले, अतीतध्यान, निरास्रव होते हैं।

अतीतगुणस्थानमें भाव क्षायिक ६ व जीवत्व ये १० होते – परन्तु अभेदविवक्षामें क्षायिकवीर्यमें शेष ४ लब्धियों व क्षायिक सम्यक्त्वमें चारित्रका अन्तर्भाव है अतः ५ भाव प्रसिद्ध हैं।

सिद्धक्षेत्र मनुष्यलोकप्रमाण ४५ लाख योजनप्रमाण मनुष्यलोककी सीधमें लोकके अन्तमें है। क्योंकि आत्मा मनुष्यलोकसे ही अतीतगुणस्थान होते है।

लवणसमुद्रसे सिद्ध होनेवालोंकी संख्या सबसे कम है फिर भी अनंत है, उससे संख्यातगुणे सिद्ध कालोद समुद्रसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध जम्बूद्वीपसे हुए, उससे

संख्यातगुणे सिद्ध धातकी खंडसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध पुष्करार्द्ध द्वीपसे हुए हैं।

तिर्यग्गति अनंतर मनुष्य होकर मुक्त होने वाले सब से कम है फिर भी ये अनंत है उससे संख्यातगुणे सिद्ध मनुष्यगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यात-गुणे सिद्ध नरकगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यातगुणे देवगतिके अनंतर मनुष्य होकर मुक्त हुए हैं।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान इन दोनों ज्ञानके धारक साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं, वे सबसे कम है, फिर भी अनंत हैं। उससे संख्यातगुणे मति श्रुत अवधि मनः पर्यय इन चार ज्ञानोंके धारी होकर पश्चात् केवली होकर मोक्ष गये। उनसे संख्यातगुणे मतिश्रुत अवधि इन तीन ानके धारी साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं।

यह सिद्ध अवस्था सर्वथा अत्यन्त निर्मल पूर्णसुख की पवित्र अवस्था है ज्ञानी आत्माओंकी अन्तिम पूर्ण विश्रामकी अवस्था वही है। इसकी प्राप्ति आत्मस्थिरता से होती है। आत्मस्थिरता सम्यग्दर्शनके अनुभवसे होती है। सम्यग्दर्शन आत्मस्वभावके परिचयसे प्रकट होता है। आत्मस्वभाव आत्माकी पर्यायोंमें गत है। जिसके परिणमन अनन्त होते चले जाते हैं फिर भी उनमें स्वभाव एक है जो परिणमता चला जाता है। इस आत्मस्वभावका

परिच्छय तत्त्वोंके भूतार्थनयसे जाननेपर होता है। इस पुस्तक में पर्यायोंका परिज्ञान किया गया है। वे पर्याय जिस गुणकी हैं उस गुणको मुख्य करके पर्यायोंको गुणोंमें लीन करना व गुणोंको गुणोंके अभिन्न आधाररूप अभेद आत्म-द्रव्यको लक्ष्य करके उसमें विलीन करना यही पुरुषार्थ है। इस उपायके पश्चात् निर्विकल्प होकर आत्मस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वयं परिणमते हुए केवल-ज्ञानमय उपयोगसे परिणमन कर अनन्त सुखी होवेगा।

इस जीवनमें सम्यग्ज्ञानका प्रयत्न करना सबसे बड़ा व्यवसाय है। सभी ज्ञाता आत्मावोंको संसार देह भोगसे विरक्त होकर आत्मामें स्थितिके लिये ज्ञाता द्रष्टा बने रहने-रूप पुरुषार्थ करना चाहिये।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्यश्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

द्वारा प्रणीत गुणस्थानदर्पण समाप्त

अपनी बातचीत

गुणस्थानदर्पणके रचयिता
ध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज
(द्वारा विरचित एक ट्रेक्ट)

अयि आत्मन्! तू क्या है? विचार! ज्ञानमय दार्थ!! तेरा इन दृश्योंके साथ क्या कोई सम्बन्ध है यथा- ॉ? नहीं, नही, कुछ भी सम्बन्ध नहीं! क्यों नहीं? यों के कोई किसीका कुछ भी परिणमन कर नहीं सकता,,।

मै ज्ञानमय आत्मा हूँ, हू, स्वयं हूँ, इसलिये अनादि ;, मैं किसी दिन हुआ होऊं पहिले न था यह बात नहीं। ‑था तो फिर हो भी नहीं सकता।

फिर ध्यान दे-इस मरजन्मसे पहिले तू था ही! या था? अनंतकाल तो निगोदिया। वहां क्या बीती? एक सेकिण्डमें २३बार पैदा हुआ और मरा। जीभ, नाक, ांख, कान, मन तो था ही नहीं और था शरीर। ज्ञानकी ोरसे देखो तो जड़सा रहा; महासंक्लेश! न कुछसे बुरी शा। सुयोग हुआ तब उस दुर्दशासे निकला।

पृथ्वी हुवा तो खोदा गया, कूटा गया, ताड़ा गया, ुरंगसे फोड़ा गया।

जल भी तो तू हुआ, तब औटाया गया. विलोरा, था गर्म आगपर डाला गया।

अग्नि हुआ, तव पानीसे, राखसे, धूलसे, बुझाया

गया, खुदेरा गया।

वायु हुआ, तब पंखोंसे, बिजलियोंसे ताड़ा गया, रबर आदिमें रोका गया।

पेढ़, फल, पत्र जब हुआ, तब...काटा, छेदा, भूना, सुखाया गया।

कीड़े भी तुम्हीं बने और मच्छर, मक्खी, बिच्छू आदि भी! बताओ कौन रक्षा कर सका? रक्षा तो दूर रही, दवाइयां डाल डाल कर मारा गया, पत्थरोंसे जूतोंसे, खुरोंसे दबोचा व मारा गया।

बैल, घोड़े, कुत्ते आदि भी तो तू हुआ। कैसे दुःख भोगे? भूखे प्यासे रहे, ठंडों मरे, गर्मियों मरे, ऊपरसे चाबुक लगे, मारे गये।

शूकर मारे जाते हैं चलते फिरतोंको छुरी भोंककर। कहीं जिन्दा ही आगमें भूने जाते हैं।

यह दूसरोंकी कथा नहीं, तेरी है। यह दशा क्यों हुई? मोह बढ़ाये, कषाय किये, खाने, पीने, विषयोंकी धून रही, नाना कर्म बांधे, मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यसेवन किये। बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्यजन्म मिला तब यहां भी मोह-राग द्वेष विषय कषायकी ही वात रही तब, जैसे मनुष्य हुए न हुए वरावर है।

कभी ऐसा भी हुआ कि तूने देव होकर या राजा, सम्राट, धन-पति होकर अनेक संपदा पाई परन्तु वह सभी संपदायें थीं तो असार और क्लेशकी कारण!! इतनेपर भी उन्हें

[illegible]कर मरना ही तो पड़ा ?

अब तो आशा ही क्या ? न कुछ। न कुछमें व्यर्थ [illegible]लसा रख कर क्यों अपनी सर्व हानि कर रहे हो ?

आत्मन् ! तू स्वभावसे ज्ञान-मय है, प्रभु है, स्वतंत्र है, [illegible] परमात्माकी जातिका है। क्या कर रहा ? उठ, चल [illegible] स्वरूपमें बस।

तू अकेला है, अकेला ही पुण्य-पाप करता, अकेला [illegible]-पाप भोगता; अकेला ही शुद्धस्वरूपकी भावना [illegible]ता, अकेला ही मुक्त हो जाता।

[illegible], चेत, पर पर ही हैं परमें निजबुद्धि करना ही दुःख है, [illegible]में आत्मबुद्धि करना सुख है परम अमृत है।

वह तू ही तो स्वय है। परकी आशा तज, अपनेमें न होनेकी धुन रख।

सोच तो यही सोच— परमात्माका स्वरूप, उसकी [illegible]में रह। लोगोंको सोच, तो उनका जैसे हित हो उस [illegible] सोच।

बोल तो यही बोल— शुद्धात्माका गुण गान... [illegible] स्तुतिमें रह लोगोंसे बोल, तो हित, मित, [illegible]वचन बोल।

कर तो ऐसा कर जिसमें किसी प्राणीका अहित [illegible]घात न हो। अपनी चर्या धार्मिक बनाओ।

तू शुद्ध चैतन्य स्वभावी है, सहजभावका अनुभव कर [illegible]प— "शुद्धचिद्रूपोऽहम्"

शिवमस्तु